जवाहरल

त सरकार के 'प्रेस इन्फरमेशन
से—

राजनीति से दूर

यात्रा, साहित्य, शिक्षा और विज्ञान-संबंधी
लेखों का संग्रह

श्री [illegible] नागरी भण्डार
बीकानेर

लेखक

जवाहरलाल नेहरू

१९५०

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

प्रकाशक की ओर से

पं० जवाहरलाल नेहरू का वैसे अधिकाश समय राजनीति [में] ही जाता है, लेकिन सच यह है कि उनकी रुचि बहुत [व्]यापक है और उन्होने उन बहुत-सी समस्याओ का भी [अ]ध्ययन किया है, जिनका राजनीति से परोक्ष भले ही हो, [सी]धा सम्बन्ध नही है। शिक्षा, साहित्य, भाषा, विज्ञान आदि दर्जनों विषयों मे उनकी गहरी दिलचस्पी है और उनका वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करके उनके [ब]ारे में उन्होंने अपने विचार प्रकट किये है। यात्रा के प्रति तो उनका प्रेम सर्व-विदित ही है। उनका सैलानी स्वभाव उन्हें प्रायः ऐसे स्थानों में ले गया है, जहा जाना निरापद नही है और कई बार तो उनका जीवन घोर सकट मे पड गया है। यात्रा के सस्मरणो मे हमे लगता है, जैसे कोई कवि बोल रहा हो।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, प्रस्तुत पुस्तक मे नेहरूजी के कुछ ऐसे लेखो का सग्रह किया गया है, जिनका विषय राजनीति नही है। इसमे कईएक तो देश-विदेश व यात्रा-संस्मरण है, जिनमे प्रकृति के कल्पापूर्ण वर्णन के साथ-साथ वहां पर बसने वाले लोगो के स्वभाव, सामाजिक रीति-रिवाज आदि का भी उल्लेख है। इनके अतिरिक्त अन्य लेखो में उन्होने साहित्य के भडार की श्रीवृद्धि, भाषा की वैज्ञानिकता, समाज-हित की दृष्टि से राष्ट्रीय योजना महिलाओ की शिक्षा, विज्ञान का महत्व आदि-आदि विषयो पर विस्तार

से चर्चा की है। इन लेखों में हमें लेखक के व्यापक व आदर्शवादी दृष्टिकोण, छोटी-से-छोटी चीज की भी गहराई में जाने की अद्भुत क्षमता, कला-प्रेम और विस्तृत अध्ययन एवं अन्वेषण का पता चलता है।

इस विषय की यह पहली ही पुस्तक प्रकाशित हो रही है। हमें विश्वास है कि पाठक इसे पसन्द करेंगे। पुस्तक की सामग्री के संकलन में 'मेरी कहानी', 'हिन्दुस्तान की समस्यायें', 'यूनिटी ऑव इंडिया', 'कुछ समस्यायें', 'नेशनल हेरल्ड' आदि से साभार सहायता ली गई है।

पुस्तक के प्रकाशन में पर्याप्त विलम्ब हुआ और उसके कारण पाठकों को प्रतीक्षा करनी पड़ी, इसका हमें खेद है।

—मन्त्री

विषय-सूची

. छुटकारा	१
ः. हिमालय की एक घटना	९
ः. वारिश में हवाई सफर	१३
ः. बम्बई मे मानसून	१९
ः. चीनयात्रा के संस्मरण	२२
ः. रेल मे छुट्टी	४१
ः. गढवाल में पाच दिन	४८
ः. सूरमा घाटी में	५६
ः. काश्मीर में बारह दिन	६४
ः. लका में विश्राम	८५
ः. जेल में जीव-जन्तु	९३
२. मै कब पढता हू ?	१०७
३. हमारा साहित्य	११४
४. साहित्य की बुनियाद	१२५
५. शब्दो का अर्थ	१२८
६. राष्ट्र-भाषा का प्रश्न	१३८
६. स्नातिकाएं-क्या करें ?	१५१
८. सामाजिक हित	१५९
९. विज्ञान और युग	१६४

राजनीति से दूर

: १ :

छुटकारा

हरिपुरा-कांग्रेस खतम हो चुकी थी। ताप्ती के किनारे पर बांसों का आश्चर्यजनक नगर सूना-सूना-सा लग रहा था। अभी दो ही एक दिन पहले तो यहां की सडकें जीवन और उत्साह से भरी भीड़ से खचाखच थी। सभी खुश-खुश, बहस-मुबाहिसा करते, हंसते-खिलखिलाते चले जा रहे थे और महसूस करते थे कि वे भी भारत के भाग्य के बनाने में हाथ बटा रहे हैं; किन्तु यह लाखों की जनता एक बार ही अपने दूर-पास घरों की ओर चल दी और यह स्थिर और शान्त वायुमण्डल सूनेपन के बोझ से व्यथित हो उठा। धूल की आंधियां भी बन्द हो गई। यहां आने पर फुरसत पा जाने का यह पहला ही मौका था और मैं ताप्ती के किनारे घूमने निकल गया। रात की बढ़ती हुई अंधियारी में मैं बहते हुए पानी की धारा तक चला गया। मुझे यह सोचकर कुछ अफसोस-सा हुआ कि यह विशाल नगर और डेरे, जो खेतों और ऊसर भूमि पर बनाये गए थे, जल्दी ही गायब हो जायंगे और फिर शायद ही इनका कोई नामोनिशान

बाकी रहे ! सिर्फ उनकी यादगार ही बनी रह जायगी। किन्तु फौरन ही अफ़सोस दूर हो गया और किसी दूर जगह को जाने की बहुत दिनों की इच्छा बलवती हो उठी, मुझ पर अधिकार कर गई। यह शारीरिक थकान नहीं थी, वरन दिमाग की व्यथा थी, जो तबदीली और ताजगी के लिए भूखी थी। राजनैतिक जीवन जो उबानेवाली चीज है और कुछ समय के लिए तो इससे मैंने छुट्टी ले ही ली थी। कुछ पुराना अभ्यास और नैतिकता मुझे जकड़े हुए थी; लेकिन दिन-ब-दिन इससे मन व्याकुल होता जा रहा था। जब मैं प्रश्नों का उत्तर देता, या भरसक मित्रों तथा साथियों से नम्रतापूर्वक बोलने की कोशिश करता तब मेरा मन कहीं और ही रहता। सुदूर उत्तर के पहाड़ों की गहरी घाटियों और बरफ से ढकी चोटियों और चीड़ और देवदार के पेड़ों से ढके हुए कगारों और हल्के ढालों पर मेरा मन विचर रहा होता। अब मैं हर तरफ से घेरे रहनेवाले प्रश्नों और समस्याओं से घबड़ाकर, कोलाहल से दूर, शान्ति तथा विश्राम की एक हल्की-सी सांस के लिए बेचैन हो रहा था।

आखिर मुझे मनचाही राह मिली और मैं अपनी दबी हुई तथा बहुत दिनों की इच्छा को पूरा करने चल पड़ा। जब छूटकर भाग जाने के लिए मेरे सामने द्वार खुल गया तब मैं मंत्रि-मण्डलों के बनने-बिगड़ने या अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर अपने को क्यों दुःख देता ?

मैंने जल्दी से इलाहाबाद को प्रस्थान किया और वहाँ यह देखकर कि कुछ झगड़ा हो रहा है, मुझे बड़ा आश्चर्य

हुआ। बड़ी झुंझलाहट हुई और क्रोध भी। चूंकि कुछ मूर्ख और धर्मान्ध साम्प्रदायिक लोग झगड़े पैदा कर रहे हैं, इसीलिए क्या मैं पहाड़ों पर जाने से रुक जाऊं? मैंने अपने मन में तर्क किया कि कुछ अधिक तो होना नहीं, हालत सुधर ही जायगी, और फिर यहां तो बहुत से समझदार आदमी हैं ही। इस तरह कोलाहल से दूर जाकर छुटकारा पाने की न दबनेवाली इच्छा के काबू होकर मैंने यह तर्क किया और अपने आपको धोखा दिया। जब मेरा काम इलाहाबाद में पड़ा हुआ था तब मैं कायर की भांति वहां से खिसक आया।

बाहर निकलकर मैं फौरन इलाहाबाद और वहां के झगड़ों को भूल गया, यहां तक कि हिन्दुस्तान की समस्याएं मेरे दिमाग के किसी कोने में जाकर खो-सी गईं। कुमायूं की पहाड़ियों में होकर अलमोड़े जानेवाली चक्करदार सड़क पर जैसे ही हम पहुंचे, मैं तो पहाड़ी हवा की मादकता में अपने को भूल-सा गया। अलमोड़े से आगे हम 'खाली' तक गए और अपनी इस यात्रा के आखिरी हिस्से को मजबूत पहाड़ी खच्चरों की पीठ पर तय किया। अब मैं 'खाली' में था, जहां पिछले दो वर्षों से जाने के लिए बेचैन हो रहा था।

सूरज डूब रहा था। पहाड़ी की चोटियां उसकी रोशनी में चमक रही थीं और घाटियों में खामोशी छाई थी। मेरी आंखें नन्दादेवी और उसकी पर्वत-मालाओं की सहचरी बर्फ से ढकी चोटियों को खोज रही थीं। हल्के बादलों ने उन्हें छिपा लिया था।

एक दिन जाता और दूसरा आता। मैंने जी भरकर

पहाड़ी हवा का आनन्द लिया और बरफ तथा घाटियों के रंग-बिरंगे दृश्यों को तबीयत भरकर निहारा। कितने सुन्दर और शांत थे वे! संसार की बुराइयां इनसे कितनी दूर और कितनी निस्सार थीं! पश्चिम और दक्षिण-पूर्व की ओर हमसे दो-तीन हजार फुट नीचे गहरी घाटियां दूर के प्रदेशों में जाकर मुड़ गई थीं। उत्तर की ओर नन्दादेवी और सफेद पोशाक में उसकी सहेलियां सिर ऊंचा किये थी। पहाड़ों के करारे बड़े डरावने थे और लगभग सीधे कटे हुए-से कभी-कभी नीचे बड़ी गहराई तक चले जाते थे, परन्तु उपत्यकाओं के आकार तरुण पयोधरोंकी तरह बहुधा गोल और कोमल थे। कहीं-कहीं वे छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गए थे,जिन पर हरे-हरे लहलहाते खेत इन्सान की मेहनत को जाहिर कर रहे थे।

सवेरा होते ही मैं कपड़े उतारकर खुले में लेट जाता और पहाड़ों का सुकुमार सूर्य मुझे अपने हल्के आलिंगन में कस लेता। ठन्डी हवा से कभी-कभी मैं तनिक कांप उठता; परन्तु फिर सूर्य की किरणें मेरी रक्षा के लिए आकर मुझे गरम और स्वस्थ कर देतीं।

कभी-कभी मैं चीड़ के पेड़ों के नीचे लेट जाता। सन-सन करती हुई हवा मेरे कानों में अनेक विचित्र बातें मन्द-मन्द कह जाती। मेरी संज्ञा उसकी तंद्रिल थपकियों से सो-सी जाती और मस्तिष्क शीतल हो जाता। मुझे अरक्षित देखकर और मुझ पर आघात के लिए ठीक अवसर पाकर वह हवा चतुराई से नीचे संसार के मनुष्यों के शठता-भरे ढंगों, सतत कलहों, उन्मादों तथा घृणाओं, धर्म के नाम पर हठधर्मी, राज-

नीति में व्यभिचार और आदर्शों से पतन की ओर संकेत करती। क्या इन सबके पास फिर लौटकर जाना उचित है? क्या इनसे सम्बन्ध स्थापित करना अपने जीवन के उद्योगों को व्यर्थ कर देना नही है? 'यहां शान्ति है, नीरवता है, स्वस्थता है और संगी-साथियो के रूप में यहां बर्फ है, पर्वत है, तरह-तरह के फूलों और घने पेड़ो से लदे हुए पर्वतो के बाजू है और है पक्षियो का कलरव गान'' यही वायु ने धीरे-से मेरे कानो में कहा और उस वासंती दिन की मनमोहक रमणीयता में मैंने उसे अपनी बात कहने से रोका नही।

पहाड़ी प्रदेश में अभी वसन्त का प्रभात ही था, अगर्चे नीचे समतल की ओर ग्रीष्म झांकने लगा था। पहाड़ियो पर गुलाब की तरह बड़े-बड़े सुन्दर रोडोडेनड्रन (Rhododendron) पुष्पों से रंजित लाल-लाल स्थल दूर से ही दीखते थे। पेड़ पत्तो से लदे हुए थे और अनगिनत पत्ते अपने नवीन, कोमल और सुन्दर हरे वस्त्रो से अनेक वृक्षो की नग्नता दूर करने के लिए बस निकलना ही चाहते थे।

'माली' से चार मील पन्द्रह सौ फुट ऊंचे पर बिनसर है। हम वहां गए और एक चिरस्मरणीय दृश्य देखा। हमारे सामने तिब्बत के पहाड़ो से लेकर नेपाल के पहाड़ो तक फैला हुआ हिमालय हिम-माला का एक ढ सौ मील का विस्तार था और इसके केन्द्र-स्थान पर ऊंचा सिर किये नन्दादेवी खड़ी थी। इसी विशाल विस्तार में बद्रीनाथ, केदारनाथ और इनके प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है और इनके पास ही मान-सरोवर और कैलाश भी है। कितना महान् दृश्य था वह!

इसकी दिव्यता से मंत्र-मुग्ध-सा होकर, मैं चकित-सा इसे एकटक देख रहा था। मुझे यह सोचकर अपने ऊपर थोड़ा-सा गुस्सा भी आया कि अगर्चे मैं सारे हिन्दुस्तान का चक्कर लगा आया और बहुत-से दूर देशों की भी यात्रा की, फिर भी अपने ही प्रान्त के एक कोने में इकट्ठे इस सौंदर्य को भूला ही रहा। हिन्दुस्तान के कितने लोगों ने इसे देखा या इसके बारे में कुछ सुना भी है ? न जाने ऐसे कितने हजारों लोग हैं, जो दिखावटी सजे हुए पहाड़ी मुकामों (Hill Station) पर हर साल नाच और जुए की तलाश में जाया करते हैं !

इस तरह दिन बीतने लगे और मेरे दिमाग में सन्तोष की मात्रा भी बढ़ने लगी; परन्तु साथ ही यह डर भी होने लगा कि मेरी यह थोड़े दिनों की छुट्टी भी अब जल्दी ही समाप्त हो जायगी। कभी-कभी पत्रों तथा समाचार-पत्रों का बड़ा-सा बंडल मेरे पास आ जाता और मैं उसे क्षेमन से खोलकर देख जाता। डाकघर दस मील दूर था। इसलिए मेरी इच्छा थी कि डाक वहीं पड़ी रहने दी जाय; लेकिन एक तो पुरानी पड़ी हुई आदत बड़ी तेज थी और फिर दूर जगह के किसी प्रिय की चिट्ठी पा जाने की सम्भावना भी मुझ में इन सिर पड़े अनिमंत्रित अतिथियों के लिए द्वार खुलवा देती थी।

यकायक एक बड़े जोर का धक्का आया। हिटलर आस्ट्रिया पर चढ़ रहा था और मुझे विपना के आनन्ददायक उपवनों को कुचल देने को तैयार जंगली पद-ध्वनियां . . पड़ीं। क्या यह चिर-सम्भावित विश्व-विनाश के

आगमन के सूचनार्थ नान्दी-पाठ था ? क्या यह महायुद्ध था ? मैं 'खाली' को भूल गया और भूल गया पहाड़ों और बरफ की शिलाओं को! मेरा शरीर तन गया और दिमाग चंचल हो उठा। जब संसार सर्वनाश के मुख में था और बुराई की जीत हो रही थी, जिसका सामना करना और उसे रोकना मेरा फर्ज था, उस समय मैं यहां पर्वतों के इस दूर कोने में पड़ा-पड़ा क्या कर रहा था ? लेकिन मैं कर ही क्या सकता था ?

एक दूसरा धक्का और आया—इलाहाबाद में साम्प्रदायिक दंगे, जिनमें कई मार डाले गए और कई के सिर फूटे ! थोड़े से आदमियों के जीने या मर जाने से अधिक कुछ नहीं बिगड़ता, परन्तु यह कैसा खिझानेवाला पागलपन और नीचता है, जिसने हमारे देश-वासियों को समय-समय पर पतन के गड्ढे में ढकेला है ?

फिर तो मेरे लिए यहां 'खाली' में भी शान्ति नहीं थी, छुटकारा नहीं था। दिमाग को दुखी करनेवाले विचारों से मैं कैसे छुटकारा पा सकता था ? अपने हृदय की धड़कन को छोड़कर मैं कैसे भाग सकता था ? मैंने समझ लिया कि संसार के प्रमादों का सामना करना और इसके क्षोभ को सहना ही पड़ेगा, हालांकि चाहें तो कभी-कभी संसार से छुटकारे का सपना भी देख ले सकते हैं । क्या ऐसा सपना सपना देखनेवाले की एक कल्पित धारणा ही नहीं है, या इसके अलावा वह कुछ और भी है ? क्या वह सपना कभी सच हो सकेगा ?

मैं थोड़े दिन और 'खाली' में ठहरा रहा; किन्तु एक अस्पष्ट अशान्ति ने मेरे दिमाग को जकड़ रखा था। आदमी की शठता से अछूते, सुनसान और अज्ञेय उन सफ़ेद पहाड़ों को देखते-देखते मुझे फिर से शान्ति महसूस हुई। आदमी चाहे कुछ भी क्यों न करे, वे पहाड़ तो वहां रहेंगे ही। अगर वर्तमान जाति आत्म-हत्या कर ले, या और किसी धीमी प्रक्रिया से गायब हो जाय तो भी वसन्त आकर इन पहाड़ी प्रदेशों का आलिंगन करेगा ही, चीड़-वृक्षों के पत्तों में लड़खड़ाती हुई हवा भी वहा ही करेगी और पक्षियों का संगीत भी चलता ही रहेगा।

परन्तु उस समय तो अच्छी या बुरी कोई भी छुटकारे की राह न थी। आगे हो तो हो। कुछ हद तक सक्रियता में ही छुटकारा था। चाहे जैसी भी हो, 'खाली' दिमाग़ को राहत नहीं दे सकती थी और न दिल में विस्मृति भर देने की दवा ही दे सकती थी! सो वहां पहुंचने के ठीक सोलह दिन बाद मैंने 'खाली' से विदाई ली। विचार में खोकर मैंने उत्तर की सफ़ेद चोटियों को आखिरी बार बड़ी देर तक एकटक निहारा और उनके पावन रेखा-चित्र को अपने दिल पर अंकित कर लिया।

अप्रैल १९३८

: २ :

हिमालय की एक घटना

मेरी शादी १९१६ में, दिल्ली में, बसंतपंचमी को हुई थी। उस साल गरमी में हमने कुछ महीने काश्मीर में बिताये। मैंने अपने परिवार को तो श्रीनगर की घाटी में छोड़ दिया और अपने एक चचेरे भाई के साथ कई हफ्ते तक पहाड़ों में घूमता रहा तथा लद्दाख रोड तक चला गया।

संसार के उच्च प्रदेश में उन संकड़ी निर्जन घाटियों में, जो तिब्बत के मैदान की तरफ से जाती हैं, घूमने का यह मेरा पहला अनुभव था। जोज़ीला घाटी की चोटी से हमने देखा तो हमारी एक तरफ नीचे की ओर पहाड़ों की घनी हरियाली थी और दूसरी तरफ खाली कड़ी चट्टान। हम उस घाटी की संकड़ी तह के ऊपर चढ़ते चले गए, जिसके दोनों ओर पहाड़ हैं। एक तरफ बरफ़ से ढकी हुई चोटियां चमक रही थी और उनमें से छोटे-छोटे ग्लेशियर (हिम-सरोवर) हमसे मिलने के लिए नीचे को रेंग रहे थे। हवा ठंडी और तीखी थी, लेकिन दिन में धूप अच्छी पड़ती थी और हवा इतनी साफ थी कि अक्सर हमें चीजों की दूरी के बारे में भ्रम हो जाता था। वे दरअसल जितनी दूर होती थी, हम उन्हें उससे बहुत कम दूर समझते थे। धीरे-धीरे

सूनापन बढ़ता गया, पेड़ों और वनस्पतियों तक ने हमारा साथ छोड़ दिया, सिर्फ नंगी चट्टान, बरफ़, पाला और कभी-कभी कुछ सुन्दर फूल रह गए। फिर भी प्रकृति के इन जंगली और सुनसान निवासों में मुझे अजीब सन्तोष मिला। मेरे उत्साह का ठिकाना न रहा।

इस यात्रा में मुझे एक बडा दिल को कंपा देनेवाला अनुभव हुआ। जोजीला घाटी से आगे सफ़र करते हुए एक जगह, जो मेरे खयाल में मातायन कहलाती थी, हमसे कहा गया कि अमरनाथ की गुफा यहां से सिर्फ आठ मील दूर है। यह ठीक था कि बीच में बुरी तरह बरफ से ढका हुआ एक बड़ा पहाड़ पड़ता था, जिसे पार करना था; लेकिन उससे क्या ? आठ मील होते ही क्या है ! जोश खूब था और तजुरबा नदारद ! हमने अपने डेरे-तम्बू, जो ग्यारह हजार पांच सौ फुट की ऊंचाई पर थे, छोड़ दिये और एक छोटे-से दल के साथ पहाड़ पर चढ़ने लगे। रास्ता दिखाने के लिए हमारे साथ यहां का एक गडरिया था।

हम लोगों ने रस्सियों के सहारे कई बर्फीली नदियों को पार किया। हमारी मुश्किलें बढ़ती गईं तथा सांस लेने में भी कठिनाई मालूम होने लगी। हमारे कुछ सामान उठाने वालों के मुह से खून निकलने लगा, हालांकि उन पर बहुत बोझ नहीं था। इधर बर्फ पड़ने लगी और बर्फीली नदियां भयानक रूप से रपटीली हो गईं। हम लोग बुरी तरह थक गए। एक-एक कदम बढ़ने के लिए बहुत कोशिश करनी पड़ती थी; लेकिन फिर भी हम यह मूर्खता करते ही गए।

अपना खीमा सुबह चार बजे छोड़ा था और बारह घंटे लगातार चढ़ते रहने के बाद एक विशाल हिमसरोवर ने का पुरस्कार मिला । यह दृश्य बहुत ही सुन्दर था । के चारों ओर बरफ से ढकी हुई पर्वत-चोटियां थीं, मानों ताओं का मुकुट अथवा अर्द्धचंद्र हो, परन्तु ताजा बरफ और रे ने शीघ्र ही इस दृश्य को हमारी आंखों से ओझल कर या । पता नहीं कि हम कितनी ऊंचाई पर थे, लेकिन मेरा याल है कि हम लोग कोई पन्द्रह-सोलह हजार फुट की चाई पर जरूर होंगे, क्योंकि हम अमरनाथ की गुफा से हुत ऊंचे थे । अब हमें इस हिमसरोवर को, जो सम्भवत ाध मील लम्बा होगा, पार करके दूसरी तरफ नीचे गुफा ो जाना था । हम लोगों ने सोचा कि चढ़ाई खत्म होने से मारी मुश्किलें भी खत्म हो गई होंगी, इसलिए बहुत थके ोने पर भी हम लोगों ने हंसते हुए यात्रा की यह मंजिल भी तय करनी शुरू की । इसमें बड़ा धोखा था, क्योंकि वहां दरारें बहुत-सी थीं और ताजी गिरनेवाली बरफ खतरनाक दरारों को ढक देती थी । इस ताजी बरफ ने ही मेरा करीब-करीब खात्मा कर दिया होता, क्योंकि मैंने ज्योंही उसके ऊपर पैर रक्खा, वह नीचे को खिसक गई और मैं धम्म से मुंह बाये एक विशाल दरार में जा गिरा । यह दरार बहुत बड़ी थी और कोई भी चीज उसमें बिलकुल नीचे पहुंचकर हजारों वर्ष बाद तक भूगर्भशास्त्रियों की खोज के लिए इत्मीनान के साथ सुरक्षित रह सकती थी; लेकिन मेरे हाथ से रस्सी नहीं छूटी और मैं दरार की बाजू को पकड़े रहा और ऊपर खींच लिया

[illegible] । [illegible]
थे, फिर भी [illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
इस प्रकार [illegible]

: ३ :

बारिश में हवाई सफर

यों हिन्दुस्तान में मैं हवाई जहाज में काफी उड़ा हूं—उत्तर में भी और दक्षिण में भी—लेकिन बारिश में उड़ने का यह पहला ही तजुरबा था। एक नया ही सुन्दर दृश्य देखने में आया। मामूली तौर से देहात खुश्क और झुलसे हुए-से दिखाई देते हैं और जमीन को देखते-देखते आंखें थक जाती हैं; लेकिन बारिश में ऐसा नहीं होता। हम सब जानते हैं कि तपती जमीन पर मानसून आनन्ददायी मेंह बरसाता है और पानी पड़ जाने पर सूखी जमीन में से कैसी बढ़िया महक उठती है। मेंह के जादू का हाथ लगा कि जमीन पर चारों तरफ हरियाली-ही-हरियाली फैल जाती है। ऊंचाई से देखने पर यह तब्दीली और ज्यादा साफ दिखाई देती थी। हरेक चीज हरी-हरी, हालांकि उस हरियाली में और भी बहुत-से रंग थे और अक्सर पानी खेतों में भरा खड़ा दिखाई देता था। पेड़ भी खड़े दीखते थे, साफ़ और शीतल। बहुत-से छोटे-छोटे गांवों की, जो धरती पर धब्बे-जैसे दिखाई देते थे, भद्दी शकल बहुत-कुछ ढक जाती थी। आंखें बार-बार इस दृश्य पर रुकती थीं, इधर-उधर घूमती थीं और थकती नहीं थीं। हिन्दुस्तान एक हरा-भरा और सुन्दर देश

दिखाई पड़ता था और मालूम होता था कि वह सौंदर्य और भूमि-सम्पत्ति के ख्याल से बड़ा धनी है।

हम ज्यादा ऊंचे नहीं उड़ते थे, आमतौर से कोई पांच-छः सौ फुट की ऊंचाई पर रहते थे। धरती तेजी से हमारे सामने से दौड़कर निकल जाती थी। हम से ऊपर बादल थे। बादलों के बीच अंधेरे में उड़ने से बचने के लिए हमें बादलों से नीचे हटना था और चूंकि हम निचाई पर उड़ रहे थे, इसलिए जमीन की चीजें हमें कुछ ज्यादा साफ़ दिखाई देती थीं। हमने देखा, मर्द और औरतें खेतों में काम कर रहे थे। ढोर मैदानों में मनमौजी ढंग से घूम रहे थे। उतनी ऊंचाई से धरती पर हम यह सब देख सकते थे और ऐसा लगता था मानों सब पास ही हो। कभी-कभी पहाड़ियां हमारे नजदीक तक आ जाती थी और हम बिल्कुल उनके ऊपर होकर आगे बढ़ जाते थे। फिर वे पीछे छूट जाती थीं। कभी-कभी हमारे ऊपर पानी बरसने लगता था और शीशे की खिड़कियों से टकराता था। मेह की हम ज्यादा परवा नहीं करते थे और न असल में हवा के झोंकों की ही हमें फिकर थी, जो हमें उछाल देते थे। लेकिन जिस निचाई पर हम उड़ रहे थे, उस पर भी जब बादल और कुहरा हमें ढकने लगा तो हमारा जहाज चलानेवाला कुछ परेशान हो उठा। बंमरोली पहुंचे तब खूब जोर से पानी पड़ रहा था और कुहरे ने हवाई अड्डे को ऐसा ढक लिया था कि उसे पहचानना भी मुश्किल था।

जमशेदपुर से बहुत तड़के चलकर दोपहर तक लखनऊ

चने की मेरी इच्छा थी; लेकिन बिजली और तूफान की ारें ज्यादा हिम्मत बढानेवाली नहीं थी और हमारे होशियार लक का भी खतरा उठाने का मन नहीं था। जबतक अच्छे ासम की खबरें न आए, हमने चलना स्थगित कर दिया और तीजा यह हुआ कि दोपहर होने से कुछ पहले हम चल सके। मारा जहाज तेजी से उडने लगा। हवा पीछे की थी और ह हमें धक्का देकर आगे बढा रही थी। नगर-गांव आते ौर पीछे छूट जाते थे। सोन और गंगा छूट गई और बनारस ी बहुत पीछे रह गया। अबतक हम अच्छी तरह से उडते हे। हां, कभी-कभी झटके लगते थे। लेकिन ज्योंही हम लाहाबाद के पास पहुंचे, काले और डरावने बादल हमारे नजदीक आते गए और साफ दिखाई देने लगा कि तूफान आनेवाला है। इन्हीं बादलों में होकर हमारे दाएं से एक ाही जहाज निकला और शान से उड़ता हुआ आगे बढ गया। वह जहाज काफी बड़ा था और तूफान में होकर आगे बढ़ सकता था, लेकिन हमारा छोटा-सा जहाज तो थपेड़े खाने लगा।

हमारे चालक ने तय किया कि उसे सावधानी रखनी चाहिए और जहाज को बनारस लौटा लाया। वहां हम फौजी हवाई अड्डे पर उतरे। कुछ देर ठहरे, तबतक जहाज में पेट्रोल भर लिया गया। हमने फिर जोखिम लेने का विचार किया, लेकिन वहां जहाज के दौड़ने के लिए काफी रास्ता ही नहीं था और हमारे जहाज में बोझ भी ज्यादा था। इसलिए बनारस में मैंने अपना अखबार छोड़ा और उपाध्याय को भी,

जो मेरे साथ ही सफ़र कर रहे थे, विदाई दी। यों हल्के होकर हम आसमानों में उड़े और इलाहाबाद की तरफ़ चले। जब हम इलाहाबाद के पास पहुंचे तो नीचे बादलों ने हमें ढक लिया और मेंह पड़ने की वजह से जो कुछ दीख पड़ता था, वह और भी कम दीख पड़ने लगा। हमने गंगा को पार किया और मेरी आंखों ने आनन्द-भवन, स्वराज्य-भवन और वैसी ही और बहुत-सी इमारतों का अंदाज़ लगाया। अल्फ़ेड पार्क भी ऊपर से बेहद खूबसूरत मालूम होता था, शायद बारिश की वजह से। हम सीधे हाईकोर्ट पर होकर गुज़रे और निचाई पर जहाज़ के उड़ने के कारण कचहरी के लोगों की भीड़-की-भीड़ बरांडे में खड़ी मुझे दिखाई दी। लोग इस छोटे-से जहाज को निचाई पर उड़ते हुए देख रहे थे।

ठीक आधा घंटे में बनारस से बमरौली पहुंच गए। जहाज़ से उस दिन और आगे बढ़ने की ज्यादा संभावना नहीं थी, इसलिए वहां तक हमें लानेवाले अपने चालक और छोटे-से जहाज़ से हमने विदा ली और अफ़सोस के साथ लखनऊ तक का सफ़र धीमी चलनेवाली रेलगाड़ी से ही तय करने का इरादा किया।

बड़े हवाई जहाज अक्सर ऊंचाई पर उड़ा करते हैं। के. एल. एम. मुझे समुद्र की सतह से अठारह हज़ार फुट ऊंचा ले गया और बर्फ से ढके आल्प्स पर होकर गुज़रा। फिलस्तीन में भी हम मृतसागर पर इतनी ऊंचाई पर उड़े कि कुहरा ..ो खिड़की के शीशों पर जमने लगा। एक बार इम्पीरियल

कम्पनी के जहाज़ में सिन्ध के रेगिस्तानों में उड़ते हुए मुझे एक अजीब तजुरबा हुआ। लम्बा सफ़र करने का मेरा यह पहला ही मौका था। सुबह का समय था और दिन की रोशनी धीरे-धीरे जमीन पर फैलती जा रही थी। अपने बहुत नीचे मैंने खूबसूरत बरफ़ का मैदान देखा। अपने चारों तरफ़, जहाँ तक मैं देख सकता था, वह मैदान-ही-मैदान दिखाई देता था, बरफ़ का चमकता हुआ एकसा ढेर। अचरज में मैंने अपनी आँखें मलीं और फिर उसे देखा, लेकिन बात सही थी। सिन्ध में बरफ़! ऐसा सोचना भी वाहियात बात थी। तो क्या वह रुई और ऊन थी, जिसके ढेर जमीन पर बिखरे पड़े थे? यह भी वैसा ही पागलों का-सा ख़याल था। हम ऊँचाई पर उड़ रहे थे और हमारे ऊपर साफ़ और नीला आसमान था। हमारे नीचे भी हज़ारों फुट तक बादल नहीं थे। नीचे वही सफ़ेद चमकता हुआ ढेर था, जो जमीन को ढके हुए दीख रहा था। जब हम कोई पाँच हज़ार फुट की निचाई पर आए और बादलों के बीच पड़ गए तो सारा भेद खुल गया। बादलों में से हम निकले और उनके नीचे उड़ने लगे तो देखा कि अब भी हम जमीन से कोई दस हज़ार फुट की ऊँचाई पर उड़ रहे थे!

ऊँचाई पर उड़ने से आदमी का जमीन से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। जमीन हमसे दूर मालूम पड़ती है और कुछ ही चीज़ें साफ़ दिखाई देती हैं। बड़ी नदी सफ़ेद लकीर-सी दीख पड़ती है और पहाड़ भी, बशर्ते कि वह बहुत ऊँचा न हो, सीधी ज़मीन से नहीं पहचाना जाता। मोटर या रेल से

चीजें दौड़ती दिखाई देती हैं और रफ्तार का अन्दाज
है। जहाज में रफ्तार का जरा भी अन्दाज नहीं
लेकिन अगर जहाज नीचा उड़ता है तो जमीन दौ
सपाटे से आती और पीछे छूटती दिखाई देती है।

अगस्त १९३९

का मैं आदी हूं, ठंडी हवा सह लेता हूं और तपती लू भी। इसलिए यह सर्दी-गर्मी के बीच का मौसम जिसमें बहुत कम तब्दीली होती है, मुझे बड़ा सुस्त मालूम होता है। वह इतना मोतदिल होता है कि मेरा बदलना स्वभाव उससे मेल नहीं खा पाता।

बंबई में बहुत बार गया हूं, लेकिन कभी भी मैंने वहां मानसून आते हुए नहीं देखा। मुझसे कहा गया था और मैंने पढ़ा भी था कि मौसम में पहले-पहल मेंह का आना बंबई की एक खास घटना होती है। शान के साथ मेंह बरसता है और अपनी उदार देन से वह शहर को चकित कर देता है। हम सब जानते हैं कि मानसून के दिनों में हिन्दुस्तान के बहुत से हिस्सों में खूब पानी पड़ता है, लेकिन लोगों ने कहा कि बंबई में कुछ और ही होता है। पानी भरे बादल जब अकस्मात पहली बार धरती को छूते हैं तो उनमें बड़ी तेजी होती है। खुश्क जमीन पर मूसलाधार पानी पड़ता है और धरती समुद्र जैसी दीखने लगती है। तब बंबई जड़ नहीं रहती, वह गतिशील हो उठती है और उसमें परिवर्त्तन भी होने लगते हैं।

इसलिए मैंने मानसून के आने की राह देखी। बैठा-बैठा मैं आसमान की ओर देखा करता कि मानसून के अग्र-दूत मुझे वहां दिखाई दें। थोड़ी-सी बौछारें आईं। ओह, यह तो कुछ भी नहीं है। मुझसे कहा गया था कि मानसून तो अभी आने वाला है। जोर का पानी पड़ा; लेकिन मैंने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया और किसी असाधारण घटना के घटने की राह देखता

रहा। जब मैं राह देख रहा था, मुझे बहुत से लोगों से मालूम हुआ कि मानसून आगया है और फैल भी गया है। कहां थे उसके ठाट-बाट! कहां था उसका बनाव-ठनाव! और कहां थी उसकी शान-बान? कहाँ था बादलों और धरती के बीच का संघर्ष? और कहाँ था लहलहाता और थपेड़े मारता हुआ समुद्र? रात में चोर की तरह मानसून बंबई में आया, जैसे कि इलाहाबाद या किसी दूसरी जगह में आ सकता था। मेरा एक और भ्रम दूर हुआ।

जून १९३९.

: ५ :

चीन-यात्रा के संस्मरण

तीसरे पहर सवा तीन बजे मैं हवाई जहाज से कुनमिंग को रवाना हुआ। हिन्दुस्तानियों और चीनियों की भीड़ ने मुझे हार्दिक विदाई दी। जिस जहाज से मैं सफर कर रहा था, वह यूरेशिया कम्पनी का था। यह चीनी-जर्मन कारपोरेशन है। जहाज जर्मनी का बना हुआ था और उसका चालक भी जर्मन था। एयरफ्रांस जहाज से वह बहुत छोटा था, उसमें दस मुसाफिरों के लिए जगह थी। जगह की कमी की वजह से हम बड़े घिरे-से महसूस करते थे।

ज्यों-ही हम चीन के करीब पहुंचे मेरे अन्दर खुशी की एक लहर उठी। प्राकृतिक दृश्य भी बड़े खूबसूरत थे। पीछे पहाड़ थे और एक नदी उनमें से निकलकर चक्कर खाती हुई घाटी में बह रही थी। जंगल से लदी पहाड़ियां ऊपर छाई हुई थीं। कहीं-कहीं हरे-हरे खेत और छोटे-छोटे गांव थे। नदी करीब-करीब लाल दिखाई देती थी और पहाड़ियों के खुले हिस्से भी गहरे लाल थे। शायद इसी रंग की वजह से हैनोय की नदी 'लाल नदी' कहलाती है।

जब हम पहाड़ों के पास पहुचे तो बहुत ऊंचाई पर उड़ने लगे और कोई चार हजार फुट पहाड़ों के ऊपर पहुंच गए।

इतिहास और खौफ़नाक ज़माने के बहादुरी के कारनामों से भरपूर देश ! और मैं तो हर बात के लिए तैयार था। लेकिन जब मैं होटल में पहुंचा तो मुझे कुछ अचरज हुआ। जितने होटल मैंने देखे थे, उन सबसे यह बिलकुल निराला था। उसका दरवाज़ा, खूबसूरत मोर और उसका बाहरी रूप आकर्षक और साफ़ चीनी ढंग का था। लेकिन होटल के बारे में मेरी जो कल्पना थी उससे यह ज़रा भी नहीं मिलता था। मैंने उसके अनुसार ही अपने को बनाया और निश्चय किया कि चीनी ढंग ऐसा ही होता होगा। जो कमरा मुझे दिया गया था, वह कुछ छोटा था, लेकिन साफ और आराम-देह था। गरम और ठंडे पानी का इंतजाम भी उसमें था। होटल का यह भेद बाद में खुला, जब मुझे बताया गया कि वह पहले मन्दिर था, पर बाद में उसे होटल बना लिया गया। मुसाफिरों के ठहरने के कमरे पादरियों या पुजारियों के लिए रहे होंगे। ऐसा दिखाई देता था, हालांकि इसमें शक नहीं कि बाद में इन्हें फिर से बनाया गया था और उसमें सामान भी जुटा दिया गया था। फिर भी पुजारी उनमें अच्छी तरह से रहते होंगे। मेरा ध्यान हिन्दुस्तान के झगड़ों की तरफ गया जो मंदिरों और मस्जिदों को लेकर बराबर चलते रहते हैं; लेकिन चीनियों ने मंदिरों को होटल बनाने में कोई रोक-थाम नहीं की और मुझे बताया गया कि बहुत-से मन्दिर स्कूल बना लिए गये हैं !

होटल का मैनेजर फ्रांसीसी था। उसने हमको बढ़िया ... खाना खिलाया और पीने के लिए ईवियन पानी

टुकडियों के अलावा लड़ाई के कोई निशान न थे। कुनमिंग पर गोलाबारी नहीं हुई थी। सड़कों में गोल पत्थर लगे थे और वहां रोशनी ज्यादा नहीं थी। दुकानों पर रोशनी खूब थी और वे आकर्षक थीं। खाने की चीजें, कपड़े और दूसरी चीजें बहुतायत से थीं। लेकिन फिर भी शान-शौकत की चीजों की कमी थी। सड़कों पर लोगों की भीड़ थी और रिक्शे चल रहे थे। अखबार बेचनेवाले लड़के अपने-अपने अखबारों के नाम और खबरें जोर-जोर से चिल्लाकर बता रहे थे। निश्चय ही शहर का रूप बिगड़ रहा था और वहां तड़क-भड़क नहीं दिखाई देती थी; लेकिन लोग खुश और बेफिक्र दिखाई देते थे। किताबों की बहुत-सी दुकानें थीं। फल बहुतायत से दिखाई पड़ते थे। अनार मैंने बहुत ज्यादा देखे। सड़क पर बहुत से धुनिये अपनी-अपनी धुनकी लिये मेरे पास से गुजरे। शायद दिन का काम खत्म करके जा रहे थे। एक जगह पर धुनिये काम कर रहे थे और एक औरत बैठी थी। एक बड़े-से घरों से वह सूत को दोहरा कर रही थी। छोटे-छोटे मोटे-ताजे बच्चे खुश होकर इधर-उधर खेल रहे थे और कुछ छोटे-छोटे लड़के और लड़कियां हमारे पास होकर गुजरे। उन्हें कोई फिक्र नहीं थी और वे हंस रहे थे।

आमतौर से फैले भद्देपन की वजह शायद यह थी कि सब कपड़ों के रंग फीके थे। करीब-करीब सभी मर्द, औरतें और बच्चे एक तरह-नीले या काले रंग की कमीज या पाजामा पहनते थे। चीनी पोशाक मुझे अच्छी लगती है। अगर यह अच्छी तरह से तैयार की जाय तो बड़ी खूबसूरत और

दिखा दिया गया है। वह बहुत बड़ा है; लेकिन है दिलचस्प। कल दोपहर में चुगकिंग पहुंचूंगा और वहां शायद एक हफ्ते ठहरू।

मैं इस बात को नहीं भूल पाता कि कल सुबह मैं कलकत्ते में था। उसके बाद से बर्मा, स्याम और हिंद-चीन से गुजरा हूं और अब मैं चीन में हू। इन जल्दी-जल्दी होनेवाले परिवर्तनों के अनुकूल होना बड़ा मुश्किल है। मौजूदा परिस्थितियों से हमारे दिमाग कितने पिछड़े हुए हैं! हम बीते दिनों की बात सोचे जाते हैं और आज की जो नियामतें हैं उनका फायदा उठाने से इन्कार कर देते हैं। ऐसी दशा में दुनिया में इतनी लड़ाई और मुसीबत हो तो अचरज क्या है?

२३ अगस्त, १९३९

कुनमिंग की आबहवा बड़ी सुहावनी और ठंडी थी और हनोय की गर्मी से वह तब्दीली बड़ी अच्छी जान पड़ी। रात को खूब सर्दी थी। उसकी वजह शायद यह थी कि पास ही एक झील थी। यह मुझे सुबह मालूम हुआ। वह झील मेरे कमरे की खिड़की के ठीक पीछे तक आती थी। हमारे होटल का नाम 'ग्रांड होटल ड्यू लैक' था।

बड़े तड़के सहन में से एक तीखी आवाज आती हुई मैंने सुनी। यह आवाज फ्रेंच व्यवस्थापिका की थी, जो सफाई और धुलाई की देख-भाल करती हुई तेजी और गुस्से में फ्रेंच भाषा में चीनी लड़कों को डांट-फटकार रही थी। और आवाजें भी आ रही थीं जैसे अखबार बेचने वाले लड़कों की।

चक्कर लगाती हुई दिखाई दी। धरती की सतह जरा भी दिखाई नहीं देती थी। मुझे अचरज हुआ कि इस ऊंचे-नीचे मुल्क में हवाई अड्डा किस तरह बनाया गया होगा। इसका जवाब बड़ा दिलचस्प था और मेरे लिए तो वह अनोखा। जहाज नदी के बीचों-बीच सूखी जमीन पर उतरा। बहुत-से बड़े-बड़े लोग वहां जमा हुए थे। फौज के कुछ बड़े अफसर और डा० चू, जिन्होंने बे-तार की खबर भेजी थी, उनके प्रमुख थे। ज्योंही मैं जहाज से उतरा, 'वन्देमातरम्' की परिचित और मधुर ध्वनि ने मेरा अभिनन्दन किया। अचरज से जब मैंने ऊपर देखा तो वर्दी में एक हिन्दुस्तानी को पाया। वह हमारे कांग्रेस मेडीकल यूनिट के धीरेश मुखर्जी थे।

स्वागत में एक छोटा-सा भाषण हुआ और फूलों के गुलदस्ते भेंट किये गए। उसके बाद हम वर्दी में खड़ी लड़कियों और लड़कों की कतार के पास होकर गुजरे। उन्होंने एक आवाज से झंडे हिलाकर हमारा अभिवादन किया। बाद में नदी पार करने के लिए हम एक नाव पर जा बैठे

नदी के दूसरे किनारे पर बहुत-सी सीढ़ियां हमारे सामने दिखाई दीं और मुझसे एक पालकी में (जिसे 'चो से' कहते थे) बैठने के लिए कहा गया। सोचा गया था कि उसमें मुझे ऊपर ले जाया जाये। इस तरह ऊपर ले जाये जाने के विचार पर मुझे हंसी आई और फुर्ती के साथ मैंने सीढ़ियों पर चढ़ना शुरू कर दिया; लेकिन फौरन ही मुझे मालूम हुआ कि ऊपर चढ़ना आसान काम नहीं है। कोई ३१५ बड़ी

नाम से पुकार लिया जाया करे, नाम उनका न लिया जावे।

सभा के बाद फौरन ही मुझे भोज में पहुंच जाना था, जिसका इंतजाम बहुत-सी संस्थाओं की तरफ से किया गया था। लेकिन तभी गुप्त रूप से खबर मिली कि बैमबारी की उम्मीद की जा रही है। इसलिए खाने का मामला ही खत्म हो गया। जल्दी से हम अपने घरकी तरफ लौटे। हमने देखा कि सड़क पहले ही से आदमियों से भरी हुई है और सब एक तरफ को जा रहे हैं। सरकार की ओर से खतरे का संकेत अभी नहीं दिया गया था, लेकिन खबर दे दी गई थी और मर्द-औरतें अपने बचाव के लिए सुरंगों की तरफ तेजी से जा रहे थे। चुगकिंग को एक सहूलियत है। दुश्मनों के जहाजों के आने की खबर जल्दी ही, एक घंटे से भी पहले, मिल जाती है।

उसके बाद फौरन ही खतरे का भोंपू बजा और मुझसे कहा गया कि मैं किसी सुरंग में चला जाऊं। यह बात मैंने बहुत नापसंद की; लेकिन अपने मेजवानों से इन्कार भी तो नहीं कर सकता था। हम लोग मोटर में बैठकर एक खास सुरंग में गए जो विदेशी मंत्री के घर से मिली हुई थी। सड़कों पर बड़ा जोशीला दृश्य दिखाई दे रहा था। लोग भाग कर या तेजी से चल कर सब-के-सब बमबारी से बचानेवाली जुदा-जुदा सुरंगों की ओर जा रहे थे। कुछेक के साथ छोटे-मोटे बंडल या बक्स थे। माताएं अपने बच्चों को छाती से लगाये हुए थीं और छोटे-छोटे कुटुम्ब साथ-साथ जा रहे थे। लारियां आदमी भर-भरकर ले जा रही थीं। किसी तरह की घबराहट वहां दिखाई नहीं देती थी। वह तो लोगों का रोज-

हम वहां इंतजार में बैठे रहे । कभी-कभी बाहर झांक लेते थे । बाहर चांदनी फैली हुई थी । कितनी शांत ! कितनी शीतल ! और अष्टमी का चांद शान से चमक रहा था ! हत्याकांड और जोर की बमबारी हो रही थी । कुछ कारणों से बमबारी को रोकनेवाली तोपें नहीं चलाई जा रही थीं और सर्चलाइट में भी रोशनी नहीं थी । उस सुरंग के हमारे पड़ोसी सोचते थे कि विरोधी जहाजों में घमासान लड़ाई चल रही है ।

वक्त काटने के लिए हमने अंतरराष्ट्रीय हालत की हाल की पेचीदगी, रूस और जर्मनी की प्रस्तावित अनाक्रमण संधि व इंगलैंड, फ्रांस और जापान पर उसका असर, इन सब पर चर्चा की । इस संधि से बहुत से चीनी खुश थे, क्योंकि इसे वह जापान के अकेला रह जाने की निशानी समझते थे ।

उस सुरंग के अंधेरे में हम दो घंटे तक बैठे रहे । सब एकदम खामोश और इकट्ठे बैठे थे और मुझे बताया गया कि हवाई हमला प्रायः तीन-चार घंटे तक चलता है । परिवर्तन के विचार से यह तजरबा मुझे अच्छा नहीं लगा; लेकिन अपने मन में यह साफतौर से जानता था कि लगातार घंटों यों ही बंद पड़े रहने की बनिस्बत मैं चन्द्रमा की ताजी और ठंडी रोशनी में जाने का खतरा उठाना ज्यादा पसन्द करूंगा । मुझे यह अधिक रुचिकर होगा कि आदमी से चूहा बनकर बिल में बैठ जाने की बनिस्बत लड़ाई के मोर्चे पर जाऊं या ऊपर आसमान में किसी पीछा करनेवाले जहाज में चक्कर लगाऊं ।

दो घंटे बीते और खबर मिली कि जापानी जहाज लौटे जा रहे हैं। सत्ताईस जहाज आये थे जिसमें से अठारह पहले ही हैंको की तरफ जाते देखे गये थे। बाकी नौ भी चले गये। रोशनी हुई और फौरन ही वहां पर शोर-गुल और जोश दिखाई देने लगा। वे सब लोग जो इतनी आत्मीयता से दो घंटे तक पास-पास बैठे थे, बिना किसी तकल्लुफ या दुआ-सलाम के जुदा हो गये और अपने-अपने घरों की तरफ तेजी से चले गये।

ज्यों-ज्यों आदमी अपनी छिपने की जगहों से बाहर आने लगे, सड़कें फिर भरने लगीं। जिस चाल से लोग गये थे, उससे बड़ी धीमे लौट रहे थे। लौटते हुए हमें लोगों के बहुत से गिरोह मिले। वे कुदाली और बेलचा लिये उन जगहों की तरफ जा रहे थे, जहां पर बमबारी की वजह से नुकसान पहुंचा था। वे उसे ठीक करने जा रहे थे, दूसरे लोग अपने-अपने काम पर। चुंगकिंग में फिर मामूली तौर से कारोबार चलता दिखाई देने लगा। कुछ लोग शायद ऐसे थे कि जिनका काम खत्म हो गया था और अपने मुर्दों

ताल्लुक था, योंही गया। मालूम होता है कि पी
करनेवाले जहाजों ने उन्हें शहर से बाहर ही रो
और कुछ मामूली-सी लड़ाई हुई। सर्च-लाइट से भु
जहाज पहचान लिये गये। इसलिए जापानी जहाज
बाहर खेतों पर ही जल्दी-जल्दी बम डालकर चले
झोंपड़ी बरबाद हो गई और दो आदमियों के म
आई। कहा जाता है कि पीछा करनेवाले ज
चलाई गई मशीनगनों के गोले कई एक जापानी
आकर लगे। जापानी जहाजों का कितना नुक
इसका तो पता नहीं। लेकिन ऐसा खयाल किया
या उम्मीद की जाती है कि उन जहाजों में से कुछ
म मजबूरन जगह-जगह उतरना पड़ा होगा।

अगले कुछ दिनों में जबतक चांदनी रात रहे
कुछ हवाई हमले और हों। भविष्य में चांदन
ताल्लुक और-और चीजों के साथ हवाई हमलों से
जाना चाहिए।

आज सुबह मुझे पता चला कि प्रधान सेनापति
रात के हमले में मेरी हिफाजत के बारे में अपनी चि
की थी। उन्होंने खबर दी कि मुझे उनकी खास
भेज दिया जाय, लेकिन खबर के आने से पहले
विदेशी मंत्री के यहां चला गया था।

बहुत से लोगों—मंत्रियों और सेनापतियों
सुजनतापूर्ण निमंत्रण दिया है कि जब कभी मौक

इस जमाने में यह शिष्टाचार और मित्रभाव की हद है।

सुबह का वक्त मैंने मिलने-मिलाने में बिताया। पहले मैं कोमितांग के प्रधान कार्यालय में गया, जहां पर मुझे प्रधान मंत्री डा० चूचिआ ह्वा मिले। कोमितांग का विधान और संगठन मुझे समझाने लगे। यह विधान तो बड़ा पेचीदा है और यह कैसे बना और किस तरह उसका संचालन होता है इस बारे में मुझे बहुत ही धुंधला खयाल रहा। फिर भी मैं इतना तो समझ गया कि कोमितांग कोई ज्यादा जनतंत्रीय संस्था नहीं है, चाहे यह कहलाती जनतंत्रीय ही है। उस दिन, बाद में मैंने कुछ मंत्रियों से शासन की रूपरेखा को समझने की कोशिश की। यह तो और भी पेचीदा है और कोमितांग और सरकार के बीच का सम्बन्ध बड़ा अजीब है। शायद आपसी बात उनमें मजबूत सम्बन्ध को कायम किये हुए है। मैंने कुछ नक्शे किताबें और कागजात मांगे हैं, जिनसे सरकार और कोमितांग का ढांचा समझ सकूं।

इसके बाद मैं विदेशी-मंत्री डा० वंग से मिलने गया, जिनका दफ्तर मेहमानखाने से पिछली तरफ सुरंग के भीतर था। बहुत देर तक हम दिलचस्प बातें करते रहे।

मेरी तीसरी मुलाकात डा० हॉलिंगटन के० टांग के साथ हुई, जिनके सुपुर्द प्रकाशन का काम है। उनका और उनके काम का मुझ पर अच्छा असर पड़ा।

दोपहर [illegible] के एक रेस्तरां (भोजनालय) में नाश्ते का इन्तज़ाम [illegible] किया गया था और यह [illegible] था। यह शहर के कार्पोरेशन, कोमितांग और सेना-

स्वागत-भोज था कमांडर की तरफ से दिया गया था। ऐसे तकल्लुफाना ढंग—भले ही मेहमान लोग उनके आदी बन गये हों—मुझे परेशान करते हैं। मुलाकाती बातचीत हुई जिसका जवाब मैंने टूटे-फूटे बेजान शब्दों में दिया और फिर उसका तरजुमा हुआ है। मेरे वहां पहुंचने और वहां से चलने पर फौजी बाजे बजने लगते हैं और सलामी का तो कोई ठिकाना ही नहीं! मुझे डर है कि मेरी बेतकल्लुफ आदतें इन सबसे मेल नहीं खातीं।

लेकिन सबसे बड़ी आफत तो खाना है, जो चलता ही रहता है, अन्त जिसका दीखता ही नहीं। और ठीक उसी वक्त जब मैं सोचता हूं कि चलो, खत्म हुआ, तभी मेज पर आधी दर्जन रकाबियां और आ धमकती हैं। चीनी खाना या उसकी कुछ चीजें मुझे पसन्द हैं। उनमें कला होती है। लेकिन खाना मेरी समझ म नहीं आता। मालूम होता है कि मजेदार रकाबियों की बहुत-सी किस्में हैं, जो एक के बाद एक चली आती हैं। खानेवाले थोड़ा-थोड़ा करके उन्हें खाते हैं और तरह-तरह के उम्दा स्वादों का आनन्द लेते जाते हैं। खाने का तरीका मैं पसन्द नहीं करता। मेरा मतलब चॉप स्टिकों से नहीं है जिन्हें होशियारी और लियाकत के साथ इस्तैमाल करना होता है। काश कि मैं उनको इस्तैमाल करने में कुशल होता! सारी रकाबियां बीच में रख दी जाती हैं और हरेक मेहमान बीच में रखी हुई रसभरी रकाबियों में से ही लजीज चीजें उठाता जाता है और लाजिमी तौर से रसभरे कुछ टुकड़े मेजपोश पर गिरते जाते हैं।

कुछ कहा, उनके दस एक-से शब्द मैं समझ गया और उन राजसी भाषा में बातचीत जारी रखने की अपनी अयोग्यता पर मुझे अफसोस हुआ।

वहां भी विदेशी पत्रकार खास तौर से अमरीकन और रूसी पत्रकार, वहां मौजूद थे।

चीनियों के नाम तो एक आफत हैं, खासकर तब जब कि खासी तादाद में मेरा साबका पड़ता है। बहुत से नाम तो करीब-करीब एक-से ही सुनाई दिये। मेरा अंदाज है कि इसी कठिनाई की वजह से चीनी लोगों को विजिटिंग कार्डों से मुहब्बत बढ़ी। ज्योंही आप किसी चीनी से मिलेंगे, फौरन ही वह अपना कार्ड निकालकर पेश कर देगा। मेरे पास बीसियों ऐसे कार्ड अभी से ही जमा हो गये हैं। हिन्दुस्तान में कार्डों का आदी न होने की वजह से मेरे पास अपने कार्ड ज्यादा नहीं हैं; पुराने जरूर मेरे पास पड़े हैं। लेकिन वे कब तक चलेंगे?

बहुत-से मंत्रियों और दूसरे लोगों के साथ जिनमें, जनरल चैन चेंग भी शामिल थे, भोज हुआ। हम दोनों की एक जबान न होते हुए भी जनरल चैन चेंग को मैं बहुत पसन्द करता हूं। वह बेतकल्लुफाना भोज था और हमारी बात-चीतें बड़ी मजेदार हुईं। चीनी मुझे बहुत अद्भुत और बढ़े-चढ़े लोग जान पड़े। उनसे बात करने में मजा आता है, बशर्ते कि जबान की मुश्किल बीच में न आ जाये।

रात को कोई हवाई हमला नहीं हुआ।

४ अगस्त, १९३९

: ६ :

रेल में छुट्टी

अधिकतर लोग रेल से लम्बी यात्रा करने स डरते हैं और ग्यशाली लोग भी, जो पहले दर्जे या समान तापमान- (Air conditioned) डब्बों में सफर करते हैं, अनेक का दुख के साथ वर्णन करते पाए जाते हैं। उनके लिए दर्जे में यात्रा करने की संभावना भी बड़े कष्ट की है, फिर ड्योढ़ा अथवा तीसरा दर्जा तो उनके लिए की कोठरी है, जो दोजखी लोगों के दुखों से या उन वों से भरी हुई है जो अबतक उनसे दूर थे और जिनका तष्क और शरीर सिर्फ मानव-श्रेणी के ऊपर के दर्जे के ी के लिए सुरक्षित सौंदर्य की अनुभूति करने की योग्यता क्षमता नहीं रखता। यह सच है कि इस देश में समान-मानवाले और तीसरे दर्जे के डब्बों में महान अन्तर है। ो अलग-अलग दुनियाओं के द्योतक हैं। वे मानव-समाज विभिन्न दर्जों के बीच चौड़ी खाई हैं। यह भी सच है कि रत में तीसरे दर्जे के यात्रियों के साथ, जिनके कारण रेल-भाग को बहुत बड़ी आय होती है, जो व्यवहार किया जाता वह बड़ा अपमानजनक और बदनामी का कारण बना ा है।

भारतीय रेल गाड़ियों के समान तापमानवाले डब्बों में सफ़र करने का मुझे कोई अनुभव नहीं है। यह दूसरी बहुत-सी चीजों की तरह से मेरी पहुंच से बाहर की चीज है। मैं तो सिर्फ बाहर से ही उन आरामदेह डब्बों में झांक ही सकता हूं। पहले दर्जे की यात्रा भी मेरे लिए भूतकाल की धुंधली याद रह गई है, क्योंकि बहुत समय से मैंने उसमें सफ़र नहीं किया है। मैं तो तीसरे, ड्योढ़े या कभी-कभी दूसरे दर्जे में सफ़र किया करता हूं।

अक्सर मेरे बहुत से दोस्त, जो आराम की जिन्दगी बसर करने के आदी हैं, मेरे नीचे के दर्जों में यात्रा करने पर घबराते हैं और कल्पना करते हैं कि मुझे जाने कितनी तकलीफ होती होगी। उन लोगोंकी चिन्ता बेकार है, क्योंकि यह लम्बी यात्राएं मेरे लिए बड़ी लाभदायक हैं और मुझे इनसे आराम मिलता है। हालांकि मैं शरीर से बहुत मोटा-तगड़ा नहीं हूं, फिर भी मैं मजबूत हूं और बिना किसी तकलीफ के, अगर ज्यादा भीड़-भाड़ न हो तो, तीसरे दर्जे में मजे में जा सकता हूं। मैं सोता हूं, आराम लेता हूं, पढ़ता भी हूं और कुछ समय के लिए रोजाना का काम और लोगों से मिलना-जुलना भूल जाता हूं। सौभाग्य से जब भी सोना चाहूं सो लेता हूं। मैं कभी अनिद्रा रोग का शिकार नहीं हुआ। मुझे नींद के लिए कभी परेशान नहीं होना पड़ा। मैं तो उस ओर से उदासीन रहता हूं। अपने आप नींद आकर मुझे अपने कब्जे में ले लेती है। इसीलिए मैं लम्बी यात्राओं की प्रतीक्षा में रहता हूं।

एक-दो अध्याय पढ डाले। पुस्तक दिलचस्प थी और सामयिक भी; किन्तु मैं कुछ हल्का साहित्य पढ़ना चाहता था। इसलिए मैंने उसे रख दिया। लेकिन मुझे लगा कि यह पुस्तक स्ट्रीट की 'यूनियन नाउ, की बनिस्वत जिसमें भारत, चीन तथा सोवियत यूनियन को छोड़कर एक संघीय यूनियन बनाने पर विचार किया गया है, काफी अच्छी थी।

उसके बाद डी० एन० प्रिट की 'लाइट आन मास्को' उठा ली, जो धारावाहिक रूप से कुछ समय पूर्व 'हेराल्ड' में प्रकाशित हो चुकी थी। उसी समय मैंने उसके कुछ अंश पढ़े थे। मैं उसे पूरा पढ़ना चाहता था और वह पढ़ने योग्य निकली भी। याद कम रह पाता है और जब हम युद्ध के प्रचार में फंस जायं तो यह भूलजाना स्वाभाविक है कि किन कारणों से यूरोप में युद्ध छिडा, वे कारण जो ब्रिटिश नीति पर प्रकाश डालते है तथा श्री चेम्बरलेन की सरकार की असलियत जाहिर करते हैं। यही सरकार युद्ध चला रही है, इसी सरकार के साथ हमे भारत के सम्बन्ध में भुगतना होगा। इसलिए हमें यह समझ लेना चाहिए कि गत कई पीढ़ियों से ऐसी प्रतिगामी सरकार ब्रिटेन में नही बनी थी। इस सरकार ने यूरोप और दूसरे स्थानों पर प्रजातन्त्र को कुचल कर फासिस्टवाद को प्रोत्साहन दिया है। अगर ब्रिटेन की जनता इसी सरकार को स्वीकार किये रहे और हम लोग जनता को भी उसी रूप में देखें तो इसमें हमारा क्या अपराध है? अगर हमें उसके कार्यों के पीछे, युद्ध से पहले और शुरू होने के बाद, साम्राज्यवाद ही दिखाई दे तो इसमें हमारा क्या दोष है?

पिलाये जाते हैं। यह कहावत कि अपराध तो होते ही हैं, लेकिन अपराध करनेवाला अभागा है, बड़ी भयानक है। हमारे अन्दर वह क्या है, जो झूठ बोलता है, हत्या करता है और चोरी करता है।''

क्या यह ठीक है ? क्या हम लोग भाग्य की कठपुतलियाँ हैं, पानी के ऊपर के बुदबुदे हैं ? एक सदी बीत गई, जब बुचनर ने यह लिखा था— महान मानवीय सफलताओं और मनुष्यों की प्राकृतिक नियमों पर विजय की सदी। और फिर भी वह उन वासनाओं को, जो उसे खाजाती हैं, या उन प्राकृतिक प्रेरणाओं को, जो उसे व्यक्ति या समूह के रूप में संचालित करती हैं, बस में नहीं कर सका और हम एक के बाद दूसरी दुर्घटना में फसते जा रहे हैं। इस तरह के अनेक दांते-जैसे दु:खी व्यक्तियों की बदनसीबी यह है कि वे इतिहास की प्रक्रियाओं के साथ कदम-से-कदम मिलाकर नहीं चल सकते। उनको कोई काम करने को नहीं रहता और न वे भाग्य के विधायक ही रह जाते हैं। क्योंकि उनका समय चूक जाता है। इसलिए वे कुछ कर ही नहीं सकते। वे तो शिकायत ही कर सकते और अपने भाग्य को रो सकते हैं। कमजोरी उनको ग्रस लेती है साथ ही यह चेतना भी, कि अन्त उनका नजदीक है।

फ्रांस की क्रांति से हटकर हम फिर लौटते हैं बीसवीं सदी पर, जिससे हम गुजर चुके हैं उस बीती कल पर, हिन्दुस्तान में हमारे लिए सफलता से पूर्ण और यूरोप के लिए मूर्खता से भरी बीसी पर, आगे आनेवाले संकट की बढ़ती हुई चेतना और भय की तीसी पर, और अब फि

गहरे गड्ढे की ओर हमारे कदम बढ़ रहे हैं! मैंने दूसरी किताब उठाली और उसमें उस आकर्षक जमाने का हाल पढ़ा, जिसे हमने अपनी आँखों से देखा है और जिसका हम पर इतना गहरा असर पड़ा है। यह किताब थी पादरी वान पैसन की आत्मकथा—'डेज आव आवर इयर्स'।

और इस तरह दिन बीत गया और रात्रि आ गई। कुछ सोया और पढ़कर फिर सो गया। सवेरा होते ही लखनऊ आ गया और यह छोटी छुट्टी खत्म हुई।

जनवरी १९४०

: ७ :

गढ़वाल में पांच दिन

मेरी बहिन विजयालक्ष्मी और मैंने हाल ही में पाच दिन गढ़वाल में व्यतीत किये हैं। इन कई वर्षों में मैंने हिन्दुस्तान का काफी भ्रमण किया है और युक्तप्रान्त के तो हरएक जिले में मैं अनेक बार हो आया हूं, किन्तु गढ़वाल ही एक ऐसा जिला रह गया था, जहां मैं नहीं गया था। हां, करीब डेढ़ साल का अर्सा हुआ होगा जबकि मैं कुछ घंटों के लिए दुगड्डे अवश्य हो आया था। पर्वतमालाएं तो वैसे ही सदा मेरे आकर्षण की वस्तु रही हैं, इसलिए मैं इस कमी को पूरा करने के लिए उत्सुक था। आने-जाने के लिए उपयुक्त मार्ग न होने के कारण अधिक लम्बे अर्से की जरूरत थी, इसी कारण मुझे कुछ सकोच था, किन्तु गढ़वाली मित्रों के आग्रह से अपनी इसी कमी के ज्ञान ने मुझे इस बात के लिए तैयार कर दिया कि मैं इस कमी को पूरा कर दू और इन पर्वतमालाओं के लिए भी चन्द दिन निकाल ही लू। बहन विजयालक्ष्मी और राजा हर्षसिंह तथा गढ़वाल के साथी मिल जाने से तो मुझे और भी प्रसन्नता थी।

यह यात्रा यद्यपि बड़ी कठिन थी, तथापि मनोरम भी थी। हम थके-मांदे लौटे; किन्तु फिर भी हमारे मस्तिष्क

जिसने हजारों वर्षों से हिन्दुस्तान के हृदय को जीत रक्खा है। दोनों नदियों के संगम के उस पार तट पर देवप्रयाग के नीचे नदी की धारा बहती है। देखने से ऐसा मालूम होता है मानों कि देवप्रयाग प्रेमपूर्ण नेत्रों से नदी के प्रवाह की ओर देख रहा है और उसका आलिंगन करना ही चाहता है।

अलकनन्दा के किनारे-किनारे हम घोड़े पर रवाना हुए। हमारे साथ-ही-साथ बद्रीनाथ जानेवाले संन्यासी और यात्री धीरे-धीरे पैदल चल रहे थे। उनका विश्वास ही उनकी यात्रा के थकान को दूर कर उन्हें सांत्वना देता है। घोड़े का मार्ग ठीक था। कहीं-कहीं यह बहुत टेढ़ा हो जाता था और कहीं इतना सीधा कि जरा भी पैर फिसलने से आदमी सैकड़ों फुट नीचे बहने वाली नदी में गिर सकता था। अन्य यात्रियों की करतलध्वनि और फूलों की वर्षा इस अवसर पर इतनी सुहावनी नही मालूम पड़ती थी जितनी कि साधारणतया हुआ करती है; क्योंकि इससे हमारे घोड़े चौंक जाते थे।

सूर्य गर्म था और छाया कम थी, इसलिए मार्ग कष्टप्रद होता जाता था। सारे रास्ते एक प्रकार के जंगली बेला के फूल खिले थे, जिनकी सुगन्ध हमारे मस्तिष्क में एक आनन्द का स्रोत उत्पन्न कर देती थी। जंगली नागफनी के पेड़ भी रास्ते में काफी थे। जंगलों का पता नहीं था और पहाड़ एकदम नंगे थे। सीढ़ियों के आकार के पेड़ भी बंजर ही से नजर आते थे।

हम एक मनोरम तथा विस्तृत घाटी में स्थित श्रीनगर में पहुचे। अलकनन्दा इसके पास ही बड़ी मन्द गति से बहती

आश्चर्य की बात है। गत महायुद्ध के समय गढ़वाल
सियों को आश्वासन दिया गया था कि वहां रेल ब
जायेगी। इतना ही नही, कई लाख रुपया व्यय कर
लिए नाप-तोल भी की गई। किन्तु न तो रेल ही बनी
न सड़क ही तैयार हुई। यदि गढ़वाल में कोई रि
रक्खी हुई होती या ब्रिटिश अधिकारियों की काफी
होती तो सड़क कभी की बन गई होती। अधिकारी ग
में रहना पसन्द नहीं करते हैं और एक प्रकार से उसे नि
ही-सा समझते हैं। उच्च अधिकारी भी निरीक्षण के
यहां बहुत कम आते हैं। इतना होने पर भी यदि
सरकार को कोई खास एतराज न होता तो यह सड़क
बन गई होती। मेरा विचार है कि सरकार को जो
राज है वह इसी आधार पर है कि वह गढ़वाल पर
नैतिक हलचलों का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ने देना च
क्योंकि वह यहां से सेना के लिए रंगरूट भर्ती करती
गढ़वाली सेनाएं काफी प्रसिद्ध हैं, किन्तु मुझे यह जान
अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि इस जिले के हजारों व्यक्ति ब
की सशस्त्र पुलिस में नौकर हैं। वे अत्यन्त गरीब हैं
मौजूदा हालत में यह जिला उनका भरण-पोषण नहीं
सकता। औद्योगिक धंधे तो नहीं के बराबर हैं, इसलिए उ
दूसरी जगहों में नौकरी तलाश करना जरूरी है।

हम बहुत-से स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों से मिले
मैंने उनसे कई सवाल किये। मुझे पता चला कि उन
९० फीसदी से भी ज्यादा बच्चे ऐसे थे, जिन्होंने मोटर

ही अच्छा है जितना कमायूं का । क्या यह मनुष्य की गलती है--किसानों की मूढ़ता है या अयोग्यता या सरकार की लापरवाही ?

इस गरीबी और बंजरपन के बीच भी हमें यह प्रतीत हुआ कि गढ़वाल में अनेक शक्तिशाली साधन छिपे पड़े हैं। जल-शक्ति जहां-तहाँ बरबाद हो रही है। इससे बिजली पैदा करके लाभ उठाया जा सकता है और इससे खेत तथा उद्योग-धंधों को भी जीवन मिल सकता है। शायद यहाँ बहुत-से खनिज पदार्थ भी है, जिन्हें खोजने की आवश्यकता है।

गढ़वाल में सड़कें बननी चाहिए, किन्तु साथ ही यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि यहां के खनिज पदार्थों और शक्तिशाली साधनों की जांच हो। इससे केवल गढ़वाल को ही बिजली नहीं मिलेगी; बल्कि प्रांत के अन्य भागों को भी पहुंचाई जा सकती है। इस प्रकार से गढ़वाल के लिए विशेषज्ञों की दो कमेटियों की शीघ्र ही नियुक्ति होनी चाहिए। एक कमेटी खनिज पदार्थों की खोज करे और दूसरी पानी के उपयोग की तरकीब निकाले और हाइड्रोइलेक्ट्रिक योजना तैयार करे।

जबतक ये योजनाएं पूरी हों तबतक यह संभव है कि दरियाओं का पानी खेतों तक पहुंचाने के लिए पम्प बना दिये जायं।

उद्योग-धंधों के विकास के लिए भी गढवाल में काफी मौका है। इन धंधों में ऊन की कताई और बुनाई मुख्य धंधे हो सकते है। इनका विकास भी सुगमता से किया जा सकता है। कमायूं

: ८ :

सूरमा घाटी में

जब मैं एक घाटी से दूसरी घाटी में गुजर रहा था तो दोनों तरफ के घने जंगल में से रेल बहुत धीरे-धीरे जा रही थी। ऐसा मालूम पड़ता था कि जंगल में घुसना आसान नहीं है। रेल की पटरियों के दोनों तरफ इतने नजदीक तक जंगल आ गये थे कि निकलने के लिए बहुत तंग रास्ता रह गया था। जंगल की लाख-लाख आंखें मानव के इस प्रयत्न पर विद्वेष से देखती थीं और उसके खिलाफ विरोध से भरी हुई थीं, कि क्यों उसके विरुद्ध उसने इतनी जुर्रत की और अपना राज्य बढ़ाने के लिए उसे साफ कर डाला? वन लाखों मुंह फाड़ कर मनुष्य को और उसके काम को हड़प लेना चाहता था।

मैं शहरों और मैदानों का रहने वाला हूं। लेकिन वन और पर्वत की पुकार मेरे अन्दर हमेशा तेज बनी रहती है। मैं जंगलों की तरफ हक्का-बक्का देखने लगा और आश्चर्य करने लगा कि इसके घने अंधकार में न जाने कितने प्रकार के जीव और क्या-क्या दुःखान्त चीजें छिपी हुई हैं। क्या इन जंगलों की असीम प्रकृति या खून से सनी प्रकृति उन शहरों और बस्तियों की प्रकृति से, जहां मर्द और औरतें रहते हैं, गई-

बनते हैं ? एक जंगली जानवर तो सिर्फ भूख बुझाने के लिए ही दूसरों को मारता है। वह खेल के लिए या मारने का आनन्द लेने के लिए दूसरों को खत्म नहीं करता। जंगल के भयानक युद्ध व्यक्तिगत होते हैं। यहां जनसंहार, जिनको लोग युद्ध कहते हैं, नहीं होते। न बम डालकर या जहरीली गैस छोड़कर बड़े पैमाने पर नाश ही किया जाता है। जंगल और जंगली पशु इन्सान से तुलना करने पर कहीं बेहतर मालूम होते हैं!

सामने से गुजरते जंगलों को देखकर इस प्रकार के विचार मेरे मन में उठ रहे थे। छोटे-छोटे स्टेशनों पर लोग जमा हो जाते थे और बहुत से पहाड़ी लोग फल, फूल, कपड़े, जो उन्होंने स्वयं तैयार किये थे, और ताजा दूध तथा कीमती तोहफे लेकर मेरा स्वागत करने के लिए आए। चमकती हुई आंखों वाले नागों के बच्चों ने मुझे स्वागत के लिए मालाएं दीं। इन पहाड़ी लोगों में से कुछ ने कांग्रेस के काम के लिए मुझे कुछ पैसे भी दिए, जिनमें तांबे और निकल के सिक्के थे। उनकी प्रेम और श्रद्धाभरी आंखों के सामने मैं लाज के मारे दब गया। इनके सामने शहरों का बड़ा बड़ा ठाट जहां स्वार्थपरायणता, चालबाजी और रुपये की लूट-खसोट से काम चलता है?

आखिर हम अपनी मंजिल पर आ पहुंचे, जहां बहुत भीड़ जमा हो गई थी। हमारा जोरदार स्वागत किया गया और वन्देमातरम् के नारों से आसमान गूंज उठा। मोटर से गांवों में होकर हम लोगों से आगे के रास्ते पर निकले।

सब जगह भीड़ और स्वागत। फिर हम सिलचर पहुंचे। शह की आबादी से भी ज्यादा लोग वहां मीटिंग में जमा हो गए थे शायद बहुत से लोग आस-पास के गावों से आ गए थे।

तीन दिन तक मैं विशेषतया सिल्हट जिले में घाटी के इधर-उधर घूमता रहा। आसाम की घाटी की तरह यह भी सड़कें प्राय बहुत खराब थी और कई जगह नावों में बैठकर पार उतरना पड़ा; लेकिन चारों ओर का दृश्य इतना सुन्दर और मोहक था कि मैं सड़क की खराबी को भूल गया और जनता की तरफ से जो शानदार स्वागत हुआ उससे मेरा दिल फड़क उठा।

सिलहट निश्चित बंगाल है। भाषा इस बात को सिद्ध करती है और वहां के जमींदारी किसान भी, जो वहां इकठे हुए। उनमे बहुत से मुसलमान थे। सिलहट ब्रह्मपुत्र की घाटी से भी कुछ मिलता-जुलता है। दोनों में एकसे चाय के बाग है, जिनमें दुखी और बेबस मजदूर काम करते हैं। ऐसे अलग किए हुए इलाके भी हैं जहां आदिवासी रहते हैं। सिलहट बंगाल अवश्य है, लेकिन इसका कुछ निजीपन भी है, जिसको स्पष्ट करना बहुत कठिन है, फिर भी वह वहां के वातावरण में साफ़ देखा जा सकता है।

मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि जनता में, हिन्दू और मुसलमानों दोनों तथा पहाड़ी लोगों के दिलों मे काग्रेस के लिए बड़ा उत्साह था। यह स्पष्ट था कि पहले वहां अच्छा काम किया गया था और उसका नतीजा अच्छा ही दिखाई देता था। यह देखकर खुशी होती थी कि जिले के सब हिस्सो में

भारतवर्ष के बाकी लोगों से, जिन्हें मैंने देखा था, भिन्न थे। हम अपने ही देश और उसके वासियों के बारे में कितना कम ज्ञान रखते हैं! उनका रूप-रंग मंगोलियन था और वे कुछ-कुछ बर्मावालों से भी मिलते-जुलते थे। और बहुत सी बातों के साथ-साथ उनकी स्त्रियों की पोशाक भी बर्मावालों के जैसी ही थी। वे बहुत ही साफ और सुथरे थे। उनकी नौजवान लड़कियां, जिनकी आंखों में हंसी खेल रही थी, मौजूदा जमाने की लगती थीं। उनके बच्चे भी बड़े खूबसूरत मालूम देते थे। उनके सिर के बाल ऊपर मस्तक पर से थोड़े कटे हुए थे और उन्हें बड़ी सफाई से सामने सजाया गया था। ये सब सुन्दर लोग किसान थे, जिन्हें थोड़ी या बिलकुल भी शिक्षा नहीं मिली थी। वे अच्छा कातना और बुनना जानते थे और उन्हें अपने ऊपर अभिमान था। ये सब वैष्णव थे। लेकिन इनमें भी कुछ बर्मी रस्म-रिवाज आ मिले थे और जैसा कि मुझे बतलाया गया कि इनके यहां भी विवाह रद्द किया जा सकता है।

दोनों घाटियों के बीच में मणीपुर रियासत है, जो इन लोगो का केन्द्र है और वहा से ये भानुबिल शाखा कुछ पीढ़ी पहले चली आई थी; लेकिन यह कहना कठिन है कि शुरू में ये लोग कब बर्मा से या और कही से आए। मेरा खयाल है कि ये लोग पिछड़ी हुई जाति में समझे जाते हैं; लेकिन यदि इनको ठीक शिक्षा और विकास पाने का मौका दिया जाय, तो ये सुन्दर और बुद्धिमान लोग क्या नही कर सकते?

सिलहट मे मुझे कुछ मुस्लिम माहीगीर मिले, जिन्होंने

गया और उमर भर की कैद की सजा दी गई। अब व
आसाम की किसी जेल की तंग कोठरी और तनहाई में अप
जवानी नष्ट कर रही होगी। वह छः वर्ष से वहीं पड़ी है
वह लड़की जिसने अपने यौवन की तरंग में ब्रिटिश साम्रा
को ललकारा, कितनी सताई गई है और उसके भावों
कितना कुचला गया है? अब उसे पहाड़ी प्रदेशों के
जंगलों में घूमने या पर्वतों की ताजा हवा में गीत ग
की आजादी नहीं है। यह जंगली वीर लड़की कुछ ही
की दूरी पर एक तंग अंधेरी कोठरी में बंद पड़ी है और
मनोस कर रह जाती है। और हिन्दुस्तान इस बहादुर लड़
को, जिसकी रग-रगमें पर्वतों की स्वतन्त्र भावना है, जान
तक नहीं है! लेकिन उसके अपने देश के लोग 'गिडा
रानी' को अच्छी तरह जानते हैं और उसका नाम बड़े प्रेम अ
अभिमान से लेते हैं। एक दिन आयगा जब भारत भी उस
याद करेगा और उसको जेल की कोठरी से बाहर निकालेग

लेकिन हमारा तथाकथित प्रान्तीय स्वायत्तशासन उस
आजाद कराने में सहायक नहीं हो सकता। उससे अधि
प्रयत्न की आवश्यकता है, कारण कि अलग किए हुए इला
प्रान्तीय मंत्रिमंडल के कार्यक्षेत्र से बाहर हैं और यह आश्च
की बात है कि ये इलाके प्रान्तीय स्वायत्तशासन मिलने
पहले की अपेक्षा अब और भी दूर हो गए हैं। आस
धारासभा में गिडालो के बारे में प्रश्न करने की भी इजाज
नहीं दी गई। १९३५ का भारत सरकार एक्ट हमें इस प्रक
के स्वराज्य की ओर ले जाता है!

अन्धेरा हो चुका था और मेरा दौरा भी खत्म होने वाला था। हम कुछ रात बीते हबीगंज पहुंचे और वहां सभा करके ट्रेन पकड़ने के लिए जल्दी से शाइस्तागंज आए। क्षितिज पर आधा चांद खड़ा था, जिसकी रुपहली आभा चली गई थी, और वह उदास और पीला नजर आता था। मैंने पिछले १२ दिनों की दौड़-धूप, भीड़ और जोश-खरोश की कल्पना की, जो अब सपने जैसे नजर आते थे। मुझे जेल की कोठरी में बैठी हुई गिडालो रानी की याद आई। वह क्या सोच रही होगी? क्या-क्या सोच कर अफसोस कर रही होगी और कैसे-कैसे सपने देख रही होगी।

दिसम्बर १९३७

: ९ :

काश्मीर में बारह दिन

"मेरी आंखों के सामने पहाड़ों का दृश्य घूमता रहता है, और वहां के खतरे भी सुहावने लगते हैं। मेरा हृदय उन शान्त हिम-कणों के लिए तरसता रहता है।"

आज से कोई छ. बरस पहले जब मैं जेल में बैठा हुआ अपनी कहानी लिख रहा था और काश्मीर की अपनी पिछली यात्रा को याद कर रहा था तो वाल्टर डी ला मेयर के ये शब्द उद्धृत किए थे। चाहे मैं जेल हूं, या बाहर; लेकिन काश्मीर की याद मुझे बराबर आती रहती है। यद्यपि वहां के पहाड और घाटियों को देखे हुए बहुत समय गुजर चुका है, फिर भी उनकी याद हरदम बनी रहती है। इच्छा थी कि मैं एक बार फिर वहां जाऊं, लेकिन अपनी इस ख्वाहिश को रोकने के लिए मुझे काफी संघर्ष करना पड़ा। क्या मेरे लिए यह वाजिब था कि मैं अपने उस काम को छोड़ देता, जिसमें मेरा तमाम समय लगा हुआ था, और वहां केवल अपनी आंखो और दिली इच्छा को तृप्त करने के लिए भाग जाता?

लेकिन दिन, महीने और वर्ष गुज़र गए। आदमी की जिन्दगी थोडी है और ज्यों-ज्यों समय गुज़रता गया मुझे एक

काश्मीर में बारह दिन

"मेरी आंखों के सामने पहाड़ों का दृश्य घूमता रहता है, और
वहां के खतरे भी सुहावने लगते हैं। मेरा हृदय उन शान्त हिमवर्गी
के लिए तरसता रहता है।"

आज से कोई छः बरस पहले जब मैं जेल में बैठा हुआ
अपनी कहानी लिख रहा था और काश्मीर की अपनी पिछली
यात्रा को याद कर रहा था तो वाल्टर डी ला मेयर के
शब्द उद्धृत किए थे। चाहे मैं जेल हूं, या बाहर; लेकि
काश्मीर की याद मुझे बराबर आती रहती है। यद्यपि क
के पहाड और घाटियों को देखे हुए बहुत समय गुजर चु
है, फिर भी उनकी याद हरदम बनी रहती है। इच्छा
कि मैं एक बार फिर वहां जाऊं, लेकिन अपनी इस ख्वा
को रोकने के लिए मुझे काफी संघर्ष करना पड़ा। क्या
लिए यह वाजिब था कि मैं अपने उस काम को छोड़
जिसमें मेरा तमाम समय लगा हुआ था, और वहां
अपनी आंखों और दिली इच्छा को तृप्त करने के लिए
जाता?

लेकिन दिन ... वर्ष गुजर गए। आद
जिन्दगी ...

तरह डर-सा लगने लगा। बड़ी उमर का फायदा हो सकता है, विशेषकर चीनवालों ने तो औरो की अपेक्षा इसकी बहुत ही प्रशंसा की है। बड़ी उमर मे स्थितप्रज्ञता आ जाती है, एक प्रकार का संतुलन कायम हो जाता है, बुद्धिमानी दरसाने लगती है, यहां तक कि हर तरह की सुन्दरता की परख भी बढ जाती है; लेकिन साथ ही आदमी मे लचीलापन नहीं रहता। बाहरी प्रभाव भी उस पर बहुत कम पड़ता है। उसके भावो को आसानी से बदला नही जा सकता। भावों की प्रतिक्रिया सीमित होती है। मनुष्य जोश मे पागल होने की बजाय बड़ी उमर में आराम और सुरक्षा की ओर ज्यादा ध्यान देता है। प्रकृति और कला के सौन्दर्य का वह गभीरता से विवेचन तो कर सकता है, लेकिन उस सौन्दर्य की झलक उसकी आंखों या दिल मे नही दिखाई देती। इस बात से जमीन आसमान का अंतर पड़ जाता है कि इटली की—फासिस्ट इटली नही, बल्कि संगीत, काव्य और कला-पूर्ण इटली अर्थात् लियोनार्डो, राफेल, माइकलएंजिलो, डान्ते और पेट्रार्क की इटली—यात्रा कोई जवानी में करता है या बुढापे मे। बुढापे मे तो सिवाय इसके कि चुपचाप बैठकर पर्वतो को मौन आश्चर्य के साथ देखा जाए, और क्या हो सकता है?

ज्यों-ज्यो समय गुज़रता गया और मेरी उमर धीरे-धीरे बुढापे की ओर बढती गई, मुझे डर लगने लगा कि अगर मैं फिर वहां जा भी सका तो भी शायद ही वहां के सौन्दर्य को हृदय मे महसूस करने के योग्य रहूं!

काश्मीर में मित्रों ने बार-बार मुझे बुलाया। शेखअब्दुला

ों मे गुजर कर बाहर निकलते हैं, हृदय को मुग्ध क
ाला सुन्दर दृश्य नजर आता है। अंधेरे मे एकदम उज
। चले जाते है और वहा बहुत नीचे काश्मीर की घाटी
ो हमारे स्वप्न के आश्चर्य-लोक की भाति सामने आती
ौर जिसके चारो ओर पहाड़ चौकसाई मे पहरा देते है

लेकिन मैं इस रास्ते से नही गया। मेरा रास्ता
ास रोचक था, लेकिन मेरा हृदय दूसरे रास्ते से लौटने
उमग से भर रहा था। बहुत दिनो बाहर रह कर, अ
मातृभूमि मे पहुचने पर सब जगह एक भाई या पुराने दो
की भाति स्वागत पाना बहुत अच्छा लगता था। जिन चि
की कल्पना मैंने कई वर्षों से सहेज कर रखी थी उन
प्रत्यक्ष सामने देखकर बहुत आनन्द मिला। मैं पहाडो
उस तग घाटी से, जिसमें दरिया जेहलम नीचे की ओर त
से बह रहा था, बाहर निकल आया और सामने काश्मीर
घाटी नजर आने लगी। सामने देवदार के पतले-पतले
पहरेदार की तरह खड़े स्वागत कर रहे थे। पास ही चि
के शानदार विशाल वृक्ष थे जो सदियो से वहा खड़े
खेतो में काश्मीर की सुन्दर स्त्रिया और बच्चे काम
रहे थे।

हम श्रीनगर पहुचे। वहा सब जगह पुराने मित्रो
हमारा स्वागत किया। हम दरिया से ऊपर की तरफ
बढ़िया नाव में बैठकर गए। पीछे-पीछे बहुत से शिकारे आ
थे और दरियाके दोनों किनारोके मकानों से स्त्री-पुरुष और
बहुत खुश दीख पड़ते थे। मुझ पर जो प्रेम की बौछार

ने कई बार मुझे मजबूर किया और प्रत्येक काश्मीरी ने याद दिलाया कि मैं भी काश्मीर का बेटा हूं और मेरा भी उसके प्रति कुछ कर्तव्य है। मैं उनके आग्रह पर हंसता था; क्योंकि मेरे दिल में वहां जाने के लिए उन सब बातों से, जो वे मेरे सामने रख रहे थे, बढ़कर प्रेरणा मौजूद थी। पिछले वर्ष मैंने वहां जाने का और संभव हो तो गांधीजी को भी साथ ले जाने का पक्का इरादा कर लिया था; पर भाग्य में कुछ और ही लिखा था। ऐन मौके पर मुझे हवाई जहाज से भारत के दूसरे छोर अर्थात् समुद्र पार लंका जाना पड़ा और वहां से वापसी पर चीन।

इसी बीच हालात बहुत तेजी से बदल गए। यूरोप में लड़ाई छिड़ गई और नई-नई कठिनाइयाँ आने लगी, और मुझे भय लगने लगा कि मैं इन घटनाओंमें अधिकाधिक फंसता जा रहा हूं। क्या काश्मीर जाने की मेरी संभावना फिर दूर पड़ जायगी? लेकिन भाग्य की इस करतूत के खिलाफ मेरे दिमाग ने विद्रोह कर दिया और जिस समय फ्रांस का भाग्य बीच में लटक रहा था, मैं सीमाप्रांत गया और वहां से काश्मीर।

मैं एबटाबाद और जेहलम की घाटी के रास्ते से गया। यह रास्ता निहायत सुहावना है, जिसमें घाटी के सौन्दर्य और आकर्षण का दृश्य धीरे-धीरे आंखों के सामने खुलता जाता है। लेकिन शायद यह अच्छा होता कि मैं जम्मू और पीर-पंजाल के रास्ते से जाता। यह रास्ता ज्यादातर सुनसान है। लेकिन ज्योंही पर्वत को पार करके लम्बी गुल

में से गुज़र कर बाहर निकलते हैं, हृदय को मुग्ध कर
वाला सुन्दर दृश्य नज़र आता है। अंधेरे में एकदम उजाल
में चले जाते हैं और वहां बहुत नीचे काश्मीर की घाटी
जो हमारे स्वप्न के आश्चर्य-लोक की भांति सामने आती
और जिसके चारों ओर पहाड़ चौकसाई से पहरा देते हैं

लेकिन मैं इस रास्ते से नहीं गया। मेरा रास्ता कु
कम रोचक था, लेकिन मेरा हृदय दूसरे रास्ते से लौटने क
उमंग से भर रहा था। बहुत दिनों बाहर रह कर, अपन
मातृभूमि में पहुंचने पर सब जगह एक भाई या पुराने दोस
की भांति स्वागत पाना बहुत अच्छा लगता था। जिन चि
की कल्पना मैंने कई वर्षों से सहेज कर रखी थी उनक
प्रत्यक्ष सामने देखकर बहुत आनन्द मिला। मैं पहाड़ों औ
उस तंग घाटी से, जिसमें दरिया जेहलम नीचे की ओर तेज
से बह रहा था, बाहर निकल आया और सामने काश्मीर क
घाटी नज़र आने लगी। सामने देवदार के पतले-पतले वृ
पहरेदार की तरह खड़े स्वागत कर रहे थे। पास ही चिना
के शानदार विशाल वृक्ष थे जो सदियों से वहां खड़े थ
खेतों में काश्मीर की सुन्दर स्त्रियां और बच्चे काम क
रहे थे।

हम श्रीनगर पहुंचे। वहां सब जगह पुराने मित्रों
हमारा स्वागत किया। हम दरिया में ऊपर की तरफ़ ए
बढ़िया नाव में बैठकर गए। पीछे-पीछे बहुत से शिकारे आ र
थे और दरिया के दोनों किनारों के मकानों में स्त्री-पुरुष और बच
बहुत खुश दीख पड़ते थे। मुझ पर जो प्रेम की बौछार

गई उससे मेरा हृदय इतना प्रभावित हुआ कि उतना पहले शायद ही कभी हुआ हो, और ज्योंही श्रीनगर का दृश्य मेरी आंखों के सामने से गुजरा, मेरा दिल इतना उमड़ आया कि मैं कुछ बोल न सका। पीछे की तरफ़ 'हारी पर्वत' था और सामने कुछ फासले पर शंकराचार्य या तख्तेसुलेमान नजर आता था। मैं काश्मीर के अन्दर पहुंच गया था।

मैंने काश्मीर में बारह दिन गुज़ारे। इस अरसे में हम कुछ दूर ऊपर अमरनाथ की घाटी तक और लिद्दर घाटी से ऊपर कोलहाई ग्लेशियर तक गये। हमने मार्तण्ड के प्राचीन मन्दिर के दर्शन किए और बिजविहारा के प्रतिष्ठित चिनार-वृक्षों के नीचे भी बैठे, जो कि पिछले चार सौ वर्षों में खूब फले-फूल गये हैं। हम मुगल बाग में इधर-उधर घूमे और कुछ देर के लिए पुराने शानदार जमाने में पहुंच गये। हमने चश्मे-शाही का मजेदार जल पिया और डल झील मे थोडी देर तैरे। काश्मीर के होशियार कारीगरों की सुन्दर दस्तकारी को भी देखा। बहुत-से जलसों में शरीक हुए, भाषण दिये और सब प्रकार के लोगो से मिलना-जुलना हुआ।

मैंने उस समय की कार्रवाइयो में दिल लगाने की कोशिश की। किसी हद तक कामयाब भी हुआ, लेकिन अधिकतर मेरा दिल कहीं और ही था, और मैं दिन भर के कार्य-क्रम और सार्वजनिक जलसों मे उस आदमी की तरह हिस्सा ले रहा था, जो किसी दूसरे ही कार्य में लगा हो, या किसी ऐसे छिपे काम पर आया हो, जिसको सबके सामने जाहिर नहीं कर सकता हो। वहां मैं ऐसे घूमता फिरा जैसे कोई सौन्दर्य

के नशे में हो और वह नशा मेरे दिमाग पर पूरी तरह हावी था।

काश्मीर की नदियों, घाटियों, झील और शानदार वृक्षों का सौन्दर्य मानवता से ऊपर उठी हुई अति रूपवती युवती की भांति नजर आता था। दूसरी ओर विशाल पर्वतों और चट्टानों, बर्फ से ढकी हुई चोटियों, ग्लेशियर और तेजी से नीचे घाटियों में गिरते हुए झरनों का भयानक दृश्य था। उन सबके सैकड़ों रूप थे अनगिनत पहलू, जो घड़ी-घड़ी बदलते थे। कभी मुस्कराते दीखते तो कभी दु:ख से व्याकुल। डल झील पर से कुहरा उठता दिखाई देता था, जिसमें से पारदर्शक बुर्के की तरह पीछे की सब चीजें नजर आती थीं। पहाड़ की चोटियों को आलिंगन में भर लेने के लिए बादल बाहें फैला देते थे या बच्चों की तरह चुपचाप खेलने के लिए नीचे को खिसक जाते थे। मैंने इस घड़ी-घड़ी बदलने वाले दृश्य को जी भर कर देखा और उसकी सुन्दरता पर मुग्ध-सा हो गया। जिस समय मैं यह दृश्य देख रहा था मुझे ऐसा लगता था मानो मैं सपना देख रहा हूं और ये चीजें ऐसी ही झूठी हैं जैसी हमारी आशाएं और आकांक्षाएं, जो शायद ही कभी पूरी होती हैं। यह ऐसे ही था जैसे सपने में कोई अपनी प्रियतमा का मुख देखता हो और आंख खुलने पर गायब हो जाता हो।'

: २ :

जब मैं चीन गया था तो मुझे चीन वालों की कारीगरी और बढ़िया दस्तकारी देखकर आश्चर्य हुआ था। भारत

भी मुद्दत से अपने दस्तकारों और कारीगरों के
रहा है; लेकिन मुझे लगा कि चीन भारत से बाजी
है। जब मैं काश्मीर आया तो मुझे महसूस हु
की दस्तकारी चीन का मुकाबला कर सकती
के कारीगर अपनी कुशल उंगलियों से वि
चीजें बनाते हैं! उनके छूने और देखने तक में आनन्

सैकड़ों साल से काश्मीर अपने दुशालों के
रहा है. लेकिन इतनी शोहरत के बावजूद दुशाल
कारी गिरती जा रही थी और पश्चिम के कारख
हुई घटिया चीजों ने उनकी जगह ले ली थी। क
और भी कई दस्तकारियों का यही हाल हो गया
चीजों का व्यापार केवल सैर-सपाटा करने वाल
सीमित हो गया था, लेकिन भारत के अमीर लो
की बनी हुई कलापूर्ण चीजों की बजाय प्राय. वि
को ही पसन्द करते थे।

बीस वर्ष पहले जब भारत के राष्ट्रीय आन्दोल
गाया तो इसका असर गहरा पड़ा। हाथ की बनी
पर आग्रह रखने से हमने इन दस्तकारियों को
दिया और कई दस्तकारियों को खत्म होने से ब
इस आन्दोलन का असर काश्मीर पर भी पड़ा और
यहाँ की बनी हुई चीजों की खपत भारत में हो
अखिल भारत चर्खा संघ ने इस काम में सबसे अ
लिया और काश्मीर-खादी से भारत में सैकड़ों
को माल आने लगा। इतना होने पर भी यदि इ

भी मुद्दत से अपने दस्तकारों और कारीगरों के
रहा है, लेकिन मुझे लगा कि चीन भारत से बाजी
है। जब मैं काश्मीर आया तो मुझे महसूस
की दस्तकारी चीन का मुकाबला कर सकती
के कारीगर अपनी कुशल उंगलियों से
चीजें बनाते हैं! उनके छूने और देखने तक में आन

सैंकडों साल से काश्मीर अपने दुशालों के
रहा है; लेकिन इतनी शोहरत के बावजूद दुशा
कारी गिरती जा रही थी और पश्चिम के कार
हुई घटिया चीजों ने उनकी जगह ले ली थी।
और भी कई दस्तकारियों का यही हाल हो गय
चीजों का व्यापार केवल सैर-सपाटा करने व
सीमित हो गया था, लेकिन भारत के अमीर
की बनी हुई कलापूर्ण चीजों की बजाय प्रायः
को ही पसन्द करते थे।

बीस वर्ष पहले जब भारत के राष्ट्रीय आन्दो
खाया तो इसका असर गहरा पड़ा। हाथ की बनी
पर आग्रह रखने से हमने इन दस्तकारियों को
दिया और कई दस्तकारियों को खत्म होने से
इस आन्दोलन का असर काश्मीर पर भी पडा औ
यहां की बनी हुई चीजों की खपत भारत में
अखिल भारत चर्खा संघ ने इस काम में सबसे अ
लिया और काश्मीर-शाखा से भारत मे सैंकड़ों
को माल जाने लगा। इतना होने पर भी गति

साधनों को व्यवस्थित और सगठित आधार पर काम में लाया जाय। यहां बहुत-सी ऐसी सस्ती चीजें मिलती हैं जिनसे छोटे-बड़े बहुत से उद्योग-धंधे चलाये जा सकते हैं। ग्रामोद्योग और दस्तकारियों को बढ़ाने के लिए यहाँ पर्याप्त क्षेत्र है। फिर सैर-सपाटे के लिए काफी लोग यहां आते-जाते रहते हैं, जिसके लिए काश्मीर एक आदर्श जगह है। यह भारत की ही नही, अपितु एशिया भर की क्रीड़ा-स्थली बनने योग्य है।

मैं खुद तो यह पसन्द नही करता कि कोई देश सैर-सपाटे के लिए आने-जाने वाले लोगों पर अवलम्बित रहे। यह परावलम्बन अच्छा नही है और बाहरी कारण इसे अकस्मात् खत्म कर दे सकते हैं, लेकिन कोई वजह मालूम नहीं देती कि चारों ओर से उन्नति करने की योजना के अग के रूप में लोगों के आने-जाने को भी तरक्की क्यों न दी जाए? इस समय यहां एक भ्रमणार्थी विभाग है सही, लेकिन इसकी कार्रवाइया मर्यादित और सरकारी तरीके की-सी मालूम होती हैं। मुझे काश्मीर का परिचय करानेवाली पुस्तकें भी नहीं मिल सकीं। काश्मीर के रास्तों के कुछ विवरण मिलते हैं; लेकिन वे इतने भद्दे हैं और गदे छपे हैं कि उन्हें देखने को भी जी नही करता। इस वक्त भी शायद वही किताबें चलती है जो एक पीढ़ी पहले की लिखी हुई हैं। भ्रमणार्थी विभाग को सबसे पहले घाटियों के ऊपर या इधर-उधर आने-जाने के रास्तों के बारे में पूरी जानकारी देने वाली सस्ती पुस्तकें निकालनी चाहिएं।

काश्मीर उन 'होस्टलों' के लिए आदर्श स्थान है, जो

मेरी इच्छा है कि श्रीनगर को नए सिरे से बनाने
आयोजित करने का काम कोई बहुत बड़ा कारीगर अप
में ले ले। सबसे पहले दरिया के किनारों पर ध्यान
चाहिए, फिर तंग गलियां और गरीबों के मकान हटाक
हुए हवादार मकान और चौक बनाने चाहिए, गंदा
निकालने की नालियों की ठीक व्यवस्था हो। व
ऐसे सुधार किए जाएं जिनसे श्रीनगर आदर्श
शहर बन जाए, जिसमें वितस्ता और अनेक नहरें म
बहती हों जिन पर शिकारे चलते हों और हाउसबोट कि
के पास खड़े हों। यह कोई खाली तस्वीर नहीं है,
यहां सौंदर्य का जादू तो पहले ही से मौजूद है, लेकिन
से मनुष्य ने अपनी करतूत से इस सुन्दरता पर पर्द
दिया है। इस गन्दगी के नीचे दबी हुई सुन्दरता जहां-त
भी अपना स्वरूप दिखाती है।

लेकिन अगर इस योजना को हाथ में लेना है तो
धनिकों के लिए महल बनाना बन्द करना पड़ेगा और र
साधनों को इस बड़े काम में जुटाना पड़ेगा। कोई आय
उस वक्त तक पूरी नहीं हो सकती जबतक ऐसे निहित
मौजूद हैं, जिन पर राज्य का बहुत-सा धन स्वाहा हो
हैं और जनता की उन्नति के काम में बाधा पड़ती है।
ही यह काम उस वक्त तक भी आगे नहीं बढ़ सकता जबत
जन-साधारण का रहन-सहन इतना गिरा हुआ हो,
उन्हें तबाह करती हो और कुरूढ़ियां उनकी तरक्क
रास्ते में रुकावट डालती हों। अगर हमें अपने सामने है

बातें और बनाएं हुईं कि जिन्दगी का पुराना डर्रा-सा चलता रहा। हम वेरीनाग, अच्छबल, अनन्तनाग (इस्लामाबा और मटन (मार्तण्ड) आदि स्थानों पर गए। मौसम अच्छा नहीं था। वर्षा के होते हुए भी बहुत से लोग हमारा स्वाग करने के लिए जमा हो जाते थे और प्रायः वर्षा में ही उ दो-चार शब्द मुझे कहने पड़ते थे। जब मैं शाम को पहलगा पहुंचा तो एक तरह चूर हो गया था और भीग गया था पिछली बार कई वर्ष पहले जब मैंने पहलगाम देखा उ वक्त से अब यह बहुत बढ़ गया था और केवल एक पड़ा जैसा नही रह गया था।

अगले दिन हम फिर वर्षा में भीगते हुए अमरनाथ सड़ पर चदनवाड़ी गए। कुछ दूर घोड़े पर और कुछ दूर पैद चले। हमारे कई साथियों को वर्षा के कारण यह सफ अच्छा नहीं लगा और वे थके हुए और परेशान लौटे, लेकि मुझे मुह पर वर्षा के थपेड़ों से बड़ा आनन्द मिला और उस पहा नाले का दृश्य, जिसके साथ-साथ हम चल रहे थे, बड़ा रोच प्रतीत हुआ। अपनी तमाम पार्टी को चंदनवाड़ी छोड़कर मै एक मित्र के साथ कुछ मील ऊपर तक गया। मुझे इस बा का दुःख हुआ कि समय की कमी के कारण हम लोग, शेषना की सुन्दर झील तक, जो कि अमरनाथ के रास्ते में अगल पड़ाव है, नहीं पहुंच सके।

हम उसी रोज चंदनवाड़ी से पहलगाम वापस लौट आए और अगले दिन सबेरे ही हमारा काफिला लिद्दर नदी के किनारे-किनारे लिद्दरवट की तरफ बढ़ा। आरू ठहरने के लिए

कोलहाई ग्लेशियर की यात्रा में बहुत-सी छोटी-मोटी घटनाएं हुईं। हमारी पार्टी में से करीब हरेक घोड़े पर से नीचे गिरा या वैसे ही पत्थरों पर ठोकर खा गया या ग्लेशियर पर लुढ़क गया; लेकिन मैं ही ऐसा खुशकिस्मत था जो एक बार भी नहीं गिरा।

अगले दिन हमने लिदरवट में आराम करने का तय किया; लेकिन पूरी तरह आराम न कर सके, क्योंकि हम उस रास्ते पर घूमने निकल गये, जो कि पहाड़ों में से गुजर कर 'सिंध घाटी' तक पहुंचता है। मैं इसी रास्ते से जाना चाहता था, क्योंकि इस रास्ते पर सोनमर्ग की बहुत सुन्दर घाटी आती है। लेकिन वहां तक पहुंचने के लिए बहुत ऊंचे दर्रे से गुजरना पड़ता है, जो कि उस मौसम में बहुत मुश्किल काम था। हमारी पार्टी बहुत बड़ी थी और हमारे पास समय भी बहुत कम था। इस दर्रे का नाम यमहेर है, अर्थात् यम की सीढ़ी। इस पर इतनी चिकनी बर्फ़ पड़ी रहती है कि उस पर फिसलने से आदमी जल्दी ही यमलोक पहुंच जाता है।

इसलिए हमने 'सिंध घाटी' तक पहुंचने का इरादा छोड़ दिया, लेकिन कुछ दूर तक गए और गूजरों की कुछ बस्तियों को देखा। ये गूजर लोग खानाबदोश होते हैं, जो गर्मियों के दिनों में अपने पशुओं को चराने के लिए इतने ऊपर चले आते हैं। ये लोग अपने लिए अस्थायी आश्रय बना लेते हैं, जिनमें न बारिश रुकती है और न ठंडी हवा। कभी-कभी ये लोग बाहर को निकली चट्टानों के नीचे रहकर ही गुजारा कर लेते हैं।

रखा था। शायद इसलिए भी कि हमारी शोहरत वहां पहले से ही पहुंच गई थी। हम लोगों ने एक कैम्प में जो ३०×२० फुट का था, जाकर पूछा कि उसके अन्दर कितने आदमी रहते हैं। लेकिन इसका भी जवाब कोई नही दे सका; क्योंकि शायद वे इतना तक भी गिनना नही जानते थे या गिनने की उन्हें कभी परवा ही नहीं हुई थी। फिर हमने उनसे और ढंग से बातें पूछी कि वहां कितने परिवार रहते हैं? वहां कोई छः या सात परिवार थे। हमने हर परिवार के मुखिया से उसकी स्त्री और बच्चों के बारे में पूछताछ की। उस एक कैम्प में करीब ५३ या ५४ आदमी थे। यह कैम्प कुछ बड़ा था। इसके अलावा और जिन कैम्पों में हम गए वे छोटे थे।

हमने इन लोगों से बात-चीत की। इन्होंने मिली-जुली हिन्दुस्तानी और पजाबी में उत्तर दिए। वे लोग काश्मीरी नही थे और न काश्मीरी भाषा जानते थे। उन्होंने अपनी मुसीबतों और गरीबी का हमसे जिक्र किया। हमें रोटी खाने के लिए निमन्त्रण दिया। उनकी रोटी इतनी मजेदार थी कि शायद मैंने आज तक कभी नही खाई। मक्की की रोटी और उसके साथ कुछ हरा साग।

मैं नही कह सकता कि गूजर लोग कहां से आये हैं और किस जाति से सम्बन्ध रखते हैं। ये लोग देखने में बहुत सुन्दर नजर आते हैं और इनकी स्त्रियों के चेहरे की बनावट बहुत आकर्षक और साफ़ है। उनके बच्चे भी बहुत प्यारे लगते हैं। बादशाह खान बच्चों को इकट्ठा करके उनके साथ खेलते थे, क्योंकि उन्हें गरीबों के बच्चों से बड़ा प्रेम है।

हमारी बहुत बड़ी पार्टी है और सबको दो रोज तक खाने के लिए देना है। इसलिए वह अपना प्रोग्राम, जो बंधा हुआ है, बदल नहीं कर सकता। लेकिन बादशाह खान अपनी बात पर अड़े रहे। बोले कि हमारी पार्टी के लोग बहुत ज्यादा खाते हैं—और यह बात सही भी थी—इसलिए यदि लोगों को थोड़ा भी खाना पड़े या एक दिन का उपवास करना पड़े तो अच्छा ही है। तब उन्हें कैसे इन्कार किया जा सकता था? इसलिए प्रोग्राम को और ज्यादा रगड़ देनी पड़ी।

अगले रोज हम निश्चय से पहलगाम पहुंच गए। हम पांच-सात रोज से बाहर की दुनिया से बिल्कुल अलग-थलग हो गये थे। इसलिए हमें कोई बाहर की खबर ही नहीं मिली, जब कि उसी समय उत्तर कोरिया की लड़ाई में महत्वपूर्ण निर्णय किए जा रहे थे। हमें पहलगाम में कुछ देरी से खबरें मिलीं और हमने महसूस किया कि हालत कितनी गंभीर हो गई है।

पहलगाम में रात भर ठहर कर हम श्रीनगर मोटर में पहुंचे। रास्ते में हमने मार्तण्ड का पुराना मन्दिर देखा, जिसके अं स्थानीय मित्रों ने शानदार जलपान का इंतजाम कर रखा थ यहां से अनन्तनाग या इस्लामाबाद गए, जहां एक या सभाएं हुईं। एक सभा बिजबिहारा के विशाल चिनार वृ के नीचे हुई। जिस मंच पर खड़े होकर मुझे भाषण देना यह बहुत पुराने और शाही पेड़ के नीचे था, जिसकी गोल कोई ५५ फुट होगी। लोगों का कहना था कि यह ४०० साल पुराना है। जब मैं इस पेड़ की ठंडी छाया

अच्छी थी, मगर परेशानी में डाल देती थी। नुवारा एलि
में बहुत-से श्रमिक, बाग-बागों के मजदूर और दूसरे ल
रोज कई मील चलकर आया करते थे और अपने साथ अ
प्रेम-पूर्ण भेंट की चीजें—जंगल के फूल, सब्जियां, घर
मक्खन —भी लाया करते थे। हम तो उनसे प्रायः बात
नहीं कर सकते थे, एक-दूसरे की तरफ देख भर लेते थे अ
मुस्करा देते थे। हमारा छोटा-सा घर उनकी भेंट की
कीमती चीजों से, जो वे अपनी दरिद्रावस्था में भी हमें
जाते थे, भर गया था। ये चीजें हम वहां के अस्पतालों अ
अनाथालयों को भेज दिया करते थे।

हमने उस द्वीप की मशहूर चीजों और ऐतिहासिक ख
हरों, बौद्ध मठों और घने जंगलों को देखा। अनुराधापुर
मुझे बुद्ध की एक पुरानी बैठी हुई मूर्ति बहुत पसन्द आ
एक साल बाद जब मैं देहरादून जेल में था तब लंका के
मित्र ने इस मूर्ति का चित्र मेरे पास भेज दिया था, जिसे
अपनी कोठरी में अपनी छोटी-सी मेज पर रक्खे रहता थ
यह चित्र मेरा बड़ा मूल्यवान साथी बन गया था और बु
की मूर्ति के गम्भीर शान्त भावों से मुझे बड़ी शान्ति अ
शक्ति मिलती थी, जिससे मुझे कई बार उदासी के मौके
बड़ी मदद मिली।

बुद्ध हमेशा मुझे बहुत आकर्षक प्रतीत हुए हैं। इस
कारण बताना तो मुश्किल है, मगर वह धार्मिक नहीं हैं, क्य
कि बौद्धधर्म के आस-पास जो मताग्रह जम गये हैं उनमें मु
कोई दिलचस्पी नहीं है। उनके व्यक्तित्व ने ही मुझे आकर्षि

भर गया। विश्राम का हमारा महीना जल्दी ही खत्म हो गया और हार्दिक दुःख के साथ हम वहां से विदा हुए। उस भूमि की और वहां के लोगों की कई बातें अब भी मुझे याद आया करती हैं; जेल में मेरे लम्बे और सूने दिनों में भी यह मीठी स्मृति मेरे साथ रही। एक छोटी-सी घटना मुझे याद है। वह शायद जाफना के पास हुई थी। एक स्कूल के शिक्षकों और लड़कों ने हमारी मोटर रोक ली और अभिवादन के कुछ शब्द कहे। दृढ़ और उत्सुक चेहरे लिये लड़के खड़े रहे और उनमें से एक मेरे पास आया। उसने मुझसे हाथ मिलाया। बिना कुछ पूछे या दलील किये उसने कहा—"मैं कभी लड़खड़ाऊंगा नहीं।" उस लड़के की उन चमकती हुई आँखों की, उस आनन्दपूर्ण चेहरे की, जिसमें निश्चय की दृढ़ता भरी हुई थी, छाप मेरे मन पर अब भी पड़ी हुई है। मुझे पता नहीं कि वह कौन था, उसका कोई पता-ठिकाना मेरे पास नहीं है, मगर किसी-न-किसी प्रकार मुझे यह विश्वास होता है कि वह अपने शब्दों का पक्का रहेगा और जब जीवन की विषम समस्याओं का मुकाबला उसे करना होगा तब वह लड़खड़ायेगा नहीं, पीछे नहीं रहेगा।

लंका से हम दक्षिण भारत, ठीक कुमारी अन्तरीप के पास, दक्षिणी सिरे पर गये। वहां आश्चर्यजनक शान्ति थी। इसके बाद त्रावणकोर, कोचीन, मलाबार, मैसूर, हैदराबाद में होकर गुजरे जो ज्यादातर देशी रियासतें हैं। इनमें से कुछ दूसरों से बहुत प्रगतिशील हैं, कुछ बहुत पिछड़ी हुई हैं। त्रावणकोर और कोचीन शिक्षा में ब्रिटिश भारत से भी बहुत

वह कानूनी हो गई है । इस तरह मैसूर और त्रावणको
दोनों मामूली शान्तिपूर्ण राजनैतिक हलचल को भी कुच
रही हैं और उन्होंने वे सुभीते भी छीन लिये हैं जो पह
दे रक्खे थे । ये रियासतें पीछे हट रही हैं; किन्तु हैदराबाद व
पीछे जाने या सुविधाएं छीनने की जरूरत ही नहीं महसू
हुई, क्योंकि वह आगे कभी बढ़ी ही न थी और न उस
इस किस्म की कोई सुविधाए दी थी। हैदराबाद में राजनै
तिक सभाएं नहीं होतीं और सामाजिक और धार्मि
सभाएं भी सन्देह की दृष्टि से देखी जाती हैं, उन
लिए भी खास इजाजत लेनी पड़ती है। वहाँ कोई भी अच्
अखबार नहीं निकलते और बाहर से बुराई के कीटाणुअ
को न आने देने के लिए हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों में छप
वाले बहुत-से अखबारों की रियासत में रोक करदी गयी है
बाहर के असर से दूर रहने की यह नीति इतनी सख्त है कि
नरम नीति के अखबारों की भी वहां मुमानियत है ।

कोचीन में हम 'सफेद यहूदी' कहानेवाले लोगों का मुहल्ल
देखने गये और उनके पुराने मन्दिर में उनकी एक प्रका
की पूजा देखी । यह छोटा-सा समाज बहुत प्राचीन औ
बहुत अजीब है । इसकी तादाद घटती जा रही है । हमसे
कहा गया कि कोचीन के जिस हिस्से में वे रहते हैं, वह
जेरूसलम के समान था । निश्चय ही वह पुरानी बनावट का
तो मालूम हुआ ।

मलाबार के किनारे हमने कुछ ऐसे कस्बे देखे जिनमें
ज्यादातर सीरियन मत के ईसाई बसे हुए थे । शायद इसका

और हम जेल की दीवारों के बाहर एक पुरानी हवालात में रखे गये थे। लेकिन थी यह अहाते में ही। यह इतनी छोटी थी कि उसमें आस-पास घूमने की कोई जगह न थी और इसलिए सुबह-शाम फाटक के सामने कोई सौ गज तक घूमने की छुट्टी थी। हम रहते तो थे जेल के अहाते में ही; लेकिन उन दीवारों के बाहर आ जाने से पर्वतमालाओं, खेतों और कुछ दूर पर आम सड़क के दृश्य दिखाई पड़ जाते थे। यह विशेष लाभ खास मुझे अकेले ही को नहीं मिला था, बल्कि देहरादून के हरेक 'ए' क्लास के कैदी को मिलता था। इसी तरह जेल की दीवार के बाहर लेकिन अहाते के अन्दर एक और छोटी इमारत थी जिसे यूरोपियन हवालात कहते थे। इसके चारों ओर कोई दीवार न थी जिससे कोठरी के अन्द का आदमी पर्वत-श्रेणियों और बाहरी जीवन के सुन्दर दृ देख सकता था। इसमें जो यूरोपियन कैदी या दूसरे लो रखे जाते उन्हें भी जेल के फाटक के पास सुबह-शाम घूम की इजाजत थी।

केवल एक कैदी ही, जो लम्बे अर्से तक ऊंची-ऊंची दीवार के अन्दर कैद रहा हो, बाहर सैर करने और इन मुक्त दृश्य के देखने के असाधारण मानसिक मूल्य को समझ सकता है मैं इस तरह बाहर घूमने का बड़ा शौक रखता था औ बारिश में भी मैंने इस सिलसिले को नहीं छोड़ा था, जबकि जोर से पानी की झड़ी लगती थी और मुझे टखने-टखने तक पानी में चलना पड़ता था। यों तो किसी भी जगह बाहर सैर करने का मैंने सदा ही स्वागत किया होता, लेकिन यहां

देहरादून में वसन्त ऋतु बड़ी सुहावनी लगी और
के मैदानों की बनिस्बत ज्यादा समय तक रही। जाड़े ने
सब पेड़ों के पत्ते झाड़ दिये थे और वे बिलकुल नंग
हो गये थे। जेल के फाटक के सामने जो चार विशाल
के पेड़ थे, उन्होंने भी, आश्चर्य तो देखिए, अपने करीब
सब पत्ते गिरा दिये थे और पत्रविहीन तथा उदास
खड़े थे। परन्तु अब वसन्त-ऋतु आई और उसकी
दायिनी वायु ने उन्हें अनुप्राणित कर दिया, उनके ए
परमाणु को जीवन-सन्देश दिया। क्या पीपल और क्या
पेडों में, एक हलचल मच गयी और उनके आसपा
रहस्यमय वातावरण छा गया, जैसे परदे के अन्दर छि
कोई प्रक्रिया हो रही हो, और एक दिन सहसा मैं
पेड़ों पर हरे-हरे अकुरों और कोपलों को उझक-उझ
झांकते हुए देखकर चकित रह गया। वह बड़ा ही उल्ल
और आनन्ददायी दृश्य था। फिर बड़ी तेजी के साथ
पड़ों में लाखों पत्ते निकल आये और वे सूर्य की किरण
चमकने और हवा के साथ अठखेलियां करने लगे। एक
से लेकर पत्ते तक का यह रूपान्तर कितना जल्दी
कितना आश्चर्यजनक होता है!

मैंने इससे पहले कभी नहीं देखा था कि आम के प
पत्ते पहले सुर्खी लिये गेहुंए रंग के होते हैं, ठीक वैसे ही
काश्मीर के पहाड़ों पर शरदऋतु में हलके रंग की छाय
जाती है, लेकिन जल्दी ही वे अपना रंग बदल क
हो जाते हैं।

लेकिन शाम को बादल एकाएक बिखर गये और जब मैंने देखा कि पर्वतश्रेणियों पर और पहाड़ियों पर बरफ-ही-बरफ जमी हुई है तो मेरा सारा कष्ट न जाने कहां चला गया! दूसरा दिन—बड़ा दिन—बड़ा मनोरम और स्वच्छ था और बरफ के आवरण में पर्वत-श्रेणियां बहुत ही सुन्दर दिखाई देती थी।

जब साधारण रोजमर्रा के कामों से हम रोक दिये गये तो हमारा ध्यान प्राकृतिक लीला के दर्शन की ओर ज्यादा गया। जो-जो जीवधारी या कीड़े-मकोड़े हमारे सामने आते उनको हम ध्यान से देखते थे। अधिक ध्यान जाने पर मैंने देखा कि मेरी कोठरी में और बाहर के छोटे-से आंगन में हर तरह के जीव-जन्तु रहते हैं। मैंने मन में कहा कि एक ओर मुझे देखो, जिसे अकेलेपन की शिकायत है और दूसरी ओर उस आंगन को देखो जो खाली या सुनसान मालूम होता है, लेकिन जिसमें जीवन उमड़ा पड़ता है। ये तमाम किस्म के रेंगनेवाले, सरकने वाले और उड़नेवाले जीवधारी मेरे काम में जरा भी दखल दिये बिना अपना जीवन बिताते थे तो मुझे क्या पड़ी थी कि मैं उनके जीवन में बाधा पहुंचाता? लेकिन हां, खटमलों, मच्छरों और कुछ-कुछ मक्खियों से मेरी लड़ाई बराबर रहती थी। ततैयों और बर्रों को तो मैं सह लेता था। मेरी कोठरी में वे हजारों की तादाद में थे। हां, एक बार उनकी मेरी झड़प हो गयी थी, जब कि एक ततैये ने, शायद अनजान में, मुझे काट खाया था। मैंने गुस्सा होकर उन सबको निकाल देना

इसके बाद अगर कहीं आसपास पेड़ हों तो झुंड-की झुंड गिलहरियां होती थी। वे बहुत ढीठ और निःशंक होकर हमारे बहुत पास आ जातीं। लखनऊ जेल में मैं बहुत देर तक एक आसन बैठे-बैठे पढ़ा करता था। कभी-कभी कोई गिलहरी मेरे पैर पर चढ़कर मेरे घुटने पर बैठ जाती और चारों तरफ देखती। फिर वह मेरी आंखों की ओर देखती तब समझती कि मैं पेड़ या जो कुछ उसने समझा हो वह नहीं हूं। एक क्षण के लिए तो वह सहम जाती फिर, दुबक कर भाग जाती। कभी-कभी गिलहरियों के बच्चे पेड़ से नीचे गिर पड़ते। उनकी मा उनके पीछे-पीछे आती, लपेट कर उनका एक गोला बनाती और उनको लेजाकर सुरक्षित जगह में रख देती। कभी-कभी बच्चे खो जाते। मेरे एक साथी ने ऐसे तीन खोये हुए बच्चे सम्हालकर रक्खे थे वे इतने नन्हे-नन्हे थे कि यह एक सवाल हो गया था कि उन्हें दाना कैसे दे? लेकिन यह सवाल बड़ी तरकीब से हल किया गया। फाउंटेनपेन के फिलरमें जरा सी रुई लगा दी। यह उनके लिए बढ़िया 'फीडिंग बोतल' हो गई।

अल्मोड़ा की पहाड़ी जेल को छोड़कर और सब जेलों में जहां-जहां मैं गया कबूतर खूब मिले और हजारों की तादाद में वे शाम को उड़कर आकाश में छा जाते थे। कभी-कभी जेल के कर्मचारी उनका शिकार करके उनसे अपना पेट भी भरते थे। और हां, मैनाएं भी थी। वे तो सब जगह मिलती हैं। देहरादून में उनके एक जोड़े ने मेरी कोठरी के दरवाजे के ऊपर ही अपना घोंसला बनाया था। मै उन्हें दाना दिया

करता। वे बहुत पालतू हो गई थी और जब कभी उनके सुबह या शाम के दाने में देर हो जाती तो वे मेरे नजदीक आकर बैठ जाती और जोर-जोर से ची-ची करके खाना मागती। उनके वे इशारे और उनकी वह अधीर पुकार देखते और सुनते ही बनती थी।

नैनी में हजारो तोते थे। उनमे से बहुतेरे तो मेरी बैरक की दीवार की दरारो में रहते थे। उनकी प्रणय-लीला आकर्षक वस्तु होती थी। वह देखनेवालो को मोहित कर लेती थी। कभी-कभी दो तोतो मे एक तोती के लिए जोर की लडाई होती। तोती शान्ति के साथ उनके झगडे के नतीजे का इतजार करती और विजेता पर अपनी प्रणयवृष्टि करने के लिए प्रस्तुत रहती थी।

देहरादून मे तरह-तरह के पक्षी थे और उनके कलरव जोर-जोर से चिचियाने, चहचहाने और टें-टें करने से एक अजीब समा बध जाता था। और सबसे बढकर कोयल की दर्द-भरी कूक का तो पूछना ही क्या! बारिश म और उससे ठीक पहले पपीहा आता। सचमुच उसका लगातार 'पियु-पियु' की रटन सुनकर दग रह जाना पडता था। चाहे दिन हो चाहे रात, चाहे धूप हो चाहे मेह, उसकी रटन नही टूटती थी। इनमे से बहुतेरे पक्षियो को हम देख नही पाते थे, सिर्फ उनकी आवाज सुनाई पडती थी, क्योकि हमारे छोटे-से आगन मे कोई पेड नही था। लेकिन गिद्ध और चीले बडी पर के साथ आसमान मे ऊची उडती और उन्हे मैं देख

और फिर हवा के झोंके के साथ ऊपर चढ़ जातीं। क
जंगली कबूतर भी हमारे सिर पर मंडराया करते थे।
बरेली-जेल में बन्दरों की आबादी काफी थी।
कूद-फांद, मुंह बनाना आदि हरकतें देखने लायक होत
एक घटना का असर मेरे दिल पर रह गया है। एक
का बच्चा किसी तरह हमारी बैरक के घेरे के अन्दर आ
वह दीवार की ऊंचाई तक उछल नहीं सकता था।
कुछ नम्बरदारों और दूसरे कैदियों ने मिलकर उसे
और उसके गले में एक छोटी-सी रस्सी बांध दी। दीव
से उसके (मैं समझता हूं) मा-बाप ने यह देखा और
से लाल हो गये। अचानक उनमें से एक बड़ा बन्दर नीचे
और सीधा भीड़ में उस जगह गिरा जहां कि यह बच्च
निस्सन्देह यह बड़ी बहादुरी का काम था, क्योंकि
वगैरह सबके पास डण्डे और लाठियां थीं और वे उन्हें
तरफ घुमा रहे थे। उनकी संख्या भी काफी थी;
साहस की विजय हुई और मनुष्यों की वह भीड़ मारे
भाग निकली। उनके डण्डे और लाठियां वहीं पड़ी रह
और बन्दर अपना बच्चा छुड़ा ले गया।

अक्सर ऐसे जीव-जन्तु भी दर्शन देते थे, जिनसे ह
रहना चाहते थे। बिच्छू हमारी कोठरियों में बहुत आया
करते थे। खासकर तब, जब बिजली जोरों से कड़का क
ताज्जुब है कि मुझे किसी ने भी नहीं काटा; क्योंकि वे अ
बेढब जगह मिल जाया करते थे—मेरे बिछौने पर या
किताब उठाई उस पर भी। मैंने खास तौर पर एक

और जहरीले-से बिच्छू को कुछ दिन तक एक बोतल में रख छोड़ा था और मक्खियां वगैरह उसको खिलाया करता था। फिर मैंने उसे एक डोरे से बांधकर दीवार में लटका दिया। लेकिन वह किसी तरह भाग निकला। मुझे यह ख्वाहिश नहीं थी कि वह फिर कहीं घूमता-फिरता मुझसे मिलने आ जाय। इसलिए मैंने अपनी कोठरी को खूब साफ किया और चारों ओर उसे ढूंढा, मगर कुछ पता न चला।

तीन-चार सांप भी मेरी कोठरी में या उसके आसपास निकले थे। एक की खबर जेल के बाहर चली गई और अखबारों में मोटी-मोटी लाइनों में छापी गई। मगर सच पूछिये तो मैंने उस घटना को पसन्द किया था। जेल जीवन यों ही काफी रूखा और नीरस होता है और जब भी किसी तरह उसकी नीरसता को कोई चीज भंग करती है तो वह अच्छी ही लगती है। यह बात नहीं कि मैं सांपों को अच्छा समझता हूं या उनका स्वागत करता हूं। मगर हां औरों की तरह मुझे उनसे डर नहीं लगता। बेशक, उनके काटने का तो मुझे डर रहता है और यदि किसी सांप को देखूं तो उससे अपने को बचाऊं भी, लेकिन उन्हें देखकर मुझे अरुचि नहीं होती और न उनसे डरकर भागता ही हूं। हां, कनखजूरे से मुझे बहुत नफरत और डर लगता है। डर तो इतना नहीं मगर उसे देखकर स्वाभाविक नफरत होती है। कलकत्ते के अलीपुर जेल में कोई आधी रात को मैं सहसा जग पड़ा। ऐसा जान पड़ा कि कोई चीज मेरे पांव पर रेंग रही है। मैंने अपनी टार्च दबाई तो क्या देखा कि एक कनखजूरा बिस्तर पर है।

एकाएक और बड़ी तेजी से बिना आगा-पीछा सोचे मैं बिस्तर में ऐसे जोर की छलांग मारी कि कोठरी की दीवा से टकराते-टकराते बचा। उस समय मैंने अच्छी तरह जाना कि रूस के प्रसिद्ध जीव-शास्त्री पेवलोव के 'रिफ्लेक्सेस'—'स्वयं स्फूर्त क्रियाएं' क्या होती हैं।

देहरादून में एक नया जन्तु देखा, या यों कहूं कि ऐसा जन्तु देखा जो मेरे लिए अपरिचित था। मैं जेल के फाटक पर खड़ा हुआ जेलर से बातचीत कर रहा था कि इतने में बाहर से एक आदमी आया जो एक अजीब जन्तु लिए हुए था। जेलर ने उसे बुलवाया। मैंने देखा कि वह एक गोह और मगर के बीच का कोई जानवर है, जो दो फुट लम्बा था। उसके पंजे थे और छिलकेदार चमड़ी। वह भद्दा और कुडौल था और बहुत कुछ जीवित था। वह एक अजीब तरह से कुंडलाकार बना हुआ था और लानेवाला उसे एक बांस में पिरोकर बड़ी खुशी से उठाता हुआ लाया था। वह उसे 'बो' कहता था। जब जेलर ने उससे पूछा कि इसका क्या करोगे तो उसने जोर से हंसकर कहा—भुज्जी—सालन—बनायेंगे। वह जंगली आदमी था। बाद को एफ० डब्ल्यू० चेपियन की 'दि जंगल इन सनलाइट ऐण्ड शैडो' (धूप-छांह में जंगल) पढ़ने से मुझे पता लगा कि वह पेंगोलिन था।

क़ैदियों की, खासकर लम्बी सजावाले क़ैदियों की, भावनाओं को जेल में कोई भोजन नहीं मिलता। कभी-कभी वे जानवरों को पाल-पोसकर अपनी भावनाओं को तृप्त किया करते हैं। मामूली क़ैदी कोई जानवर नहीं रख सकता।

पड़ा। मुझे कुत्तों का बड़ा शौक रहा है और घर पर कुछ कुत्ते पाले भी थे, मगर दूसरे कामों में लगे रहने की वजह से उनकी अच्छी तरह सम्हाल न कर सका। जेल में मैं उनके साथ के लिए उनका कृतज्ञ था। हिन्दुस्तानी आमतौर पर घर में जानवर नहीं पालते। यह ध्यान देने लायक बात है कि जीव-दया के सिद्धात के अनुयायी होते हुए भी वे अक्सर उनको अवहेलना करते हैं, यहां तक कि गाय के साथ भी, जो हिन्दुओं को बहुत प्रिय और पूज्य है और जो अक्सर दंगो का कारण बनती है, दया का बर्ताव नहीं होता। मानों पूजाभाव और दयाभाव दोनों का साथ नहीं हो सकता।

भिन्न-भिन्न देशवालों ने भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों को अपनी महत्वाकांक्षा या अपने चारित्र्य का प्रतीक बनाया है। उकाब संयुक्तराज्य अमेरिका और जर्मनी का, सिंह और 'बुलडॉग' इंग्लैण्ड का, लड़ते हुए मुर्गे फ्रांस का और भालू पुराने रूस का प्रतीक है। सवाल यह है कि वे संरक्षक पशु-पक्षी राष्ट्रीय चारित्र्य को किस तरफ ले जायंगे? इनमें से ज्यादातर तो आक्रमणकारी, लड़ाकू और शिकारी जानवर हैं। ऐसी दशा में यह कोई ताज्जुब की बात नही है कि जो लोग इन नमूनों को सामने रखकर अपना जीवन-निर्माण करते हैं वे जान-बूझकर अपना स्वभाव वैसा ही बनाते हैं, आक्रामक रुख अख्तियार करते हैं, दूसरों पर गुर्राते हैं, गरजते हैं और झपट पड़ते हैं। और यह भी आश्चर्य की बात नहीं है कि हिन्दू नरम और अहिंसक हैं; क्योंकि उनका आदर्श पशु है गाय।

पड़ा। मुझे कुत्तों का बड़ा शौक रहा है और घर पर कुछ कु
पाले भी थे, मगर दूसरे कामों में लगे रहने की वजह
उनकी अच्छी तरह सम्हाल न कर सका। जेल में मैं उन
साथ के लिए उनका कृतज्ञ था। हिन्दुस्तानी आमतौर पर घ
में जानवर नहीं पालते। यह ध्यान देने लायक बात है
जीव-दया के सिद्धांत के अनुयायी होते हुए भी वे अक्स
उनकी अवहेलना करते हैं, यहा तक कि गाय के साथ भी
जो हिन्दुओं को बहुत प्रिय और पूज्य है और जो अक्स
दगों का कारण बनती है, दया का बर्ताव नहीं होता। मान
पूजाभाव और दयाभाव दोनों का साथ नहीं हो सकता।

भिन्न-भिन्न देशवालों ने भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों क
अपनी महत्वाकांक्षा या अपने चारित्र्य का प्रतीक बनाया है
उकाब संयुक्तराज्य अमेरिका और जर्मनी का, सिंह औ
'बुलडॉग' इंग्लैण्ड का, लड़ते हुए मुर्गे फ्रांस का और भा
पुराने रूस का प्रतीक है। सवाल यह है कि वे संरक्षक पशु
पक्षी राष्ट्रीय चारित्र्य को किस तरफ ले जायंगे? इनमें
ज्यादातर तो आक्रमणकारी, लड़ाकू और शिकारी जानव
हैं। ऐसी दशा में यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि जो
लोग इन नमूनों को सामने रखकर अपना जीवन-निर्माण
करते हैं वे जान-बूझकर अपना स्वभाव वैसा ही बनाते हैं,
आक्रामक रुख अख्तियार करते हैं, दूसरों पर गुर्राते हैं,
गरजते हैं और झपट पड़ते हैं। और यह भी आश्चर्य की
बात नहीं है कि हिन्दू नरम और अहिंसक हैं; क्योंकि उनका
आदर्श पशु है गाय।

कि ऐसे सफर में होनेवाली सब असुविधाओं का मुझे अनुभव है, क्योंकि दूसरे लोग इस बात पर जोर देते हैं कि मैं आराम से बैठूं और दूसरी ऐसी मेहरबानियां करते हैं, जिससे मेरे सफर में मुझे सुखद मानवता का स्पर्श हो जाता है। यह बात नहीं कि मुझे असुविधा से कोई प्रेम है या मैं जान-बूझकर उसे मोल लेना चाहता हूं। तीसरे दर्जे में मैं जं सफर करता हूं, वह भी इसलिए नहीं कि उसमें कोई बात या सिद्धांत निहित है, बल्कि असली बात तो रुपये, आने, पाई की है। तीसरे दर्जे के और दूसरे दर्जे के किराये में इतना ज्यादा फर्क है कि अत्यन्त आवश्यक हो जाने पर ही मैं दूसरे दर्जे के सफर की शौकीनी करने का साहस करता हूं।

पुराने दिनों में कोई एक दर्जन साल पहले, सफर करते हुए मैं बहुत-कुछ लिखा करता था, खासकर कांग्रेस-कार्य से संबंधित पत्र सफर में ही लिखता था। यहां तक कि मुख्तलिफ रेलों में सफर का बार-बार काम पड़ते रहने से उनकी अच्छाई-बुराई का निर्णय मैं इसी बात से करने लग गया कि लिखने की सुविधा उनमें से किसमें ज्यादा है। मेरा ख्याल है कि ईस्ट इंडियन रेलवे को मैंने पहला नम्बर दिया था, नार्थ वेस्टर्न रेलवे भी ठीक थी, लेकिन जी. आई. पी. रेलवे निश्चित रूप से बुरी थी और बुरी तरह से हिला डालती थी। ऐसा क्यों था, यह मैं नहीं जानता, न मैं यही जानता हूं कि विभिन्न रेलवे कंपनियों के किराये एक दूसरे से इतने अलग क्यों होने चाहिएं, जब कि वे सब-की-सब हैं सरकारी नियंत्रण में ही। यहां भी जाकर जी. आई. पी. रेलवे ही एक सबसे

तीसरे दर्जे का ख्याल आने पर तो मैं कांप उठा। गर्मी वगैरह को तो मैं बर्दाश्त कर सकता हूं; लेकिन धूल का बर्दाश्त करना मेरे लिए बहुत मुश्किल है।

इस लम्बे सफर में जो किताबें मैंने पढ़ीं उनमें एक एडवर्ड विल्सन के बारे में थी। वह एक असाधारण और स्मरणीय मनुष्य था, जो पशु-पक्षियों का प्रेमी था, ऐंटार्कटिक प्रदेश में स्काट का मरते दम तक साथी रहा था। और यह किताब मुझे एक दूसरे स्मरणीय मनुष्य से मिली थी, इसलिए इसका मुझे दुहरा आकर्षण था। ए. जी. फ्रेजर का यह उपहार था, पश्चिमी अफ्रीका के उस एचिमोटा कालेज में बहुत दिनों तक प्रिंसिपल रहे थे, जो कि उनके परिश्रम, सहानुभूति और प्रेम से निर्मित अफ्रिकन शिक्षा की श्रेष्ठ और अद्भुत यादगार है।

जैसे-जैसे हमारी गाड़ी आगे बढ़ती गई, सिंध का रेतीला और अटपटा रेगिस्तान गुजरता गया। इसी बीच मैंने ऐंटार्कटिक प्रदेशों में विपरीत परिस्थितियों से मनुष्य की बहादुराना लड़ाई, उस मानवी साहस की, जिसने खुद शक्तिमान प्रकृति पर ही विजय प्राप्त कर ली और ऐसी सहिष्णुता का हाल पढ़ा, जो करीब-करीब विश्वास से बाहर की ही चीज है। साथ ही हरेक संभवनीय दुर्भाग्य के मौके पर अपने को भूलकर खुशमिजाजी के साथ अपने साथियों के प्रति वफादार और भारी प्रयत्नशील रहने का भी हाल पढ़ा। और यह सब किस ? न तो संबंधित शक्तियों की किसी सुविधा के लिए न किसी सार्वजनिक हित या विज्ञान के लाभ की ही

दृष्टि से। तब ? महज उस साहसिकता के कारण जो कि इन्सान में होती है—वह भावना जो कभी थकना नहीं जानती, बल्कि हमेशा ऊँचे-ही-ऊँचे जाने की कोशिश करती है—वह वाणी कि जो आकाश से हमें सुनाई देती है। हम में से ज्यादातर इस आवाज को बहरे कानों से सुनते हैं, लेकिन यह अच्छा है कि कुछ लोग इसको सुनते हैं और हमारी मौजूदा सतान को श्रेष्ठ बनाते हैं। उनके लिए जीवन एक निरन्तर चुनौती, एक दीर्घ साहसिकता और प्रयोगात्मक चीज़ है।

"I count life just a stuff to try the soul's strength on..."

ऐसा था वह एडवर्ड विल्सन और यह ठीक ही है कि दक्षिणी ध्रुव में पहुचकर वह और उसके साथी उसी विस्तृत ऐंटार्कटिक प्रदेश में अंतिम विश्राम करने लगे, जहा लम्बी-लम्बी दिन-रातें होती हैं और गहरी खामोशी छाई रहती है। वहा वर्फ और तुषार के ढेरों में वे चिर-विश्राम कर रहे हैं और उनके ऊपर इन्सानी हाथ से यह आलेख किया हुआ है, जो उचित ही है :

"प्रयत्न, आकांक्षा और खोज में लगे रहो। हिम्मत कभी न हारो।"

ध्रुवों को विजय किया जा चुका है, रेगिस्तानों की पैमाइश हो चुकी है, ऊंचे-ऊंचे गिरि-शिखरों पर मनुष्य पहुच गया है, लेकिन एवरेस्ट (गौरीशंकर) अभी भी अविजित होने का गर्वानुभव कर रहा है।

मगर मनुष्य सतत प्रयत्नशील है और एवरेस्ट को उसके आगे झुकना ही पड़ेगा; क्योंकि उसके दुबले-पतले शरीर में मस्तिष्क एक ऐसी चीज है, जो किसी बन्धन को नहीं मानती और उसमें ऐसी भावना है, जो पराजय को कभी स्वीकार नहीं करती। तब, रहा क्या ? जमीन, क्योंकि छोटी-छोटी और अद्‌भुत एवं सतत साहसिकता धीरे-धीरे इससे विदा होती जा रही मालूम पड़ती है। कहा तो यहां तक जाता है कि ध्रुव-प्रदेश से युद्ध शायद बहुत जल्दी ही एक साधारण घटना हो जायगी, पहाड़ों पर रस्सों के सहारे दौड़ते हुए चढ़ा जाने लगेगा और उनके शिखरों पर शानदार होटल खुलेंगे और तरह-तरह के सुन्दर बाजे रात की खामोशी और बर्फ की चिर नीरवता को भंग करेंगे, अधेड़ उम्र के आदमी ताश खेलते हुए इधर-उधर की गपशप करेंगे और नौजवान व बूढ़े बड़े जोरों से आनन्दोपभोग की खोज करेंगे।

इतने पर भी साहसियों के लिए साहस के काम हमेशा मौजूद रहते हैं। और अभी भी यह विशाल संसार उन्हीं का साथ देता है, जिनमें भावुकता और साहसिकता होती है, और तारे समुद्रों के पार उनका आवाहन करते हैं। जब कि जो लोग चाहें उनके लिए जीवन में साहसिकता वहीं मौजूद हो, तब क्या साहस दिखाने के लिए ध्रुवों पर या पहाड़ी रेगिस्तान में जाने की जरूरत है ? ओह! अपने और अपने समाज के जीवन को हमने कैसा बना दिया है, अपने सामने मानव-भावना की स्वतंत्र वृद्धि एवं आनन्द और बहुलता के होते हुए भी हम भूखों मर रहे हैं। और पहले से कहीं रही गुलामी में हमने अपनी

भावनाओं को कुचल डाला है। हमें चाहिए कि भरसक इस हालत के बदलने की कोशिश करें, जिससे मानव-प्राणी अपनी ज्ञान विरासत के योग्य बने और अपने जीवन को सौंदर्य, आनंद ं आध्यात्मिकता की बातों से संपन्न करे। जीवन में साहस स्फूर्ति मिलती है और यही सबसे बड़ी साहसिकता है।

रेगिस्तान अंधेरे से ढका है। लेकिन गाड़ी अपने निश्चित क्ष्य की ओर भागी जा रही है। इसी तरह शायद मानवता ो विघ्न-बाधाओं से लड़ती आगे बढ़ रही है। हालांकि रात धेरी है और लक्ष्य हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है, शीघ्र ही वेरा होगा और रेगिस्तान के बजाय नीला समुद्र हमारा वागत करेगा।

ुलाई, १९३६

: १३ :

हमारा साहित्य

दो वर्ष से अधिक हुए, जब मैं कुछ महीनों के लिए जेल के बाहर आया था, तब मैं भाई शिवप्रसाद गुप्त से बनारस मिलने गया था। इस सिलसिले में मुझे अवसर मिला कि मैं कुछ मित्रों से, जो हिन्दी साहित्य से सम्बन्ध रखते हैं, मिलूं। इस मौके को मैंने खुशी से अपनाया। साहित्य के बारे में हम में कुछ चर्चा हुई। मैं डरते-डरते ही बोला था, क्योंकि मैं इस मामले में बहुत कम जानता था और इसलिए कुछ कहने का साहस भी नही रखता था। बाद में मैंने आश्चर्य के साथ सुना कि हमारी आपस की बातचीत कुछ अखबारों में किसी ने छपवा दी है। मैं नही जानता कि क्या छपा था, क्योंकि मैंने उसे देखा नही। इसलिए मैं कह नहीं सकता कि वह सही था या गलत। फिर यह सुनने में आया कि हिन्दी के समाचारपत्र मुझसे बहुत नाराज हैं और बनारस की मेरी बातों पर बहुत बहस-मुबाहसा हो रहा है। मैं और कामों मे लगा था, इसलिए इधर ध्यान न दे सका और फिर जल्द ही दुबारा जेल चला गया।

मैंने उस समय, दो बरस पहले, क्या कहा था, उसे दोहराने की आवश्यकता नही। उसमें कोई खास बात नहीं थी। न यह बात बहस तलब ही है कि मेरा हिन्दी-साहित्य का ज्ञान

पास न आई हों और इस बारे में और लोग मेरी मदद कर सकें। अगर हिन्दी भाषा के प्रकाशक, लेखक और अगर किसी साहित्य के पंडित एक दो या दस ऐसी पुस्तकों किताबों की फेहरिस्त बना दें जो पढ़ने की हों तो उनसे मुझे मदद मिलेगी। वह पुस्तकें ऐसी हों, जो पिछले तीस या चालीस वर्षों में लिखी गई हों, यानी इस जमाने की ही हों।

साहित्य क्या चीज है, इस पर हर भाषा में बहस रहती है और बहुत तरह की बातें होती हैं। इस बहस में मैं पड़ना नहीं चाहता, लेकिन अधिकतर लोग शायद यह मान लेंगे कि उसमें दो प्रश्न उठते हैं—एक विषय का और दूसरा उसके प्रतिपादन का। साहित्य में दोनों ही की जरूरत है।

मेरी पहली कठिनाई यह है कि जिन विषयों में मुझे दिलचस्पी है, उनमें मुझे अभी तक हिन्दी में बहुत कम पुस्तकें मिली हैं। मैं आजकल की दुनिया को समझना चाहता हूं। जो ऊपरी वारदातें होती हैं और जिनका हाल हम कुछ समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं, मैं उनके पीछे देखना चाहता हूं, ताकि मैं समझूं कि वे क्यों हुए; क्या-क्या अन्दरूनी ताकतें दुनिया के लोगों को इधर-उधर धकेल रही हैं; क्या-क्या खयाल उनके दिमागों में भरे हुए हैं; क्या-क्या भावनाएं उनके दिलों में हैं, कौन-कौन-से बड़े-बड़े सवाल संसार-भर को और हमारे देश को परेशान कर रहे हैं? मेरा दिमाग उस परेशानी में खुद फंसा है, उन सवालों के जवाब ढूंढ़ता रहता है, उन कठिन गांठों को खोलने की कोशिश करता है। इसलिए हर समय रोशनी की तलाश रहती है, जो अंधेरे में उजाला

करें और ठीक रास्ता दिखायें, जिसपर हम इतमीनान से आगे बढ़ें।

दुनिया को समझने के लिए सिर्फ राजनीति को समझना काफी नहीं है। राजनीति तो अधिकतर एक कठपुतली का तमाशा है, जिसके पीछे कुछ ऐसी छिपी, और अकसर खुली, शक्तियां हैं, जो उसको चलाती हैं। अर्थशास्त्र के सब पहलुओं को जानने की आवश्यकता हो जाती है और आजकल जो सोने, चांदी और नाना प्रकार के सिक्कों ने अजीब खेल कर रखा है, बड़ी-बड़ी मशीनों और कारखानों ने दुनिया में जो जबरदस्त क्रांति पैदा की है, राष्ट्रवाद, लोकतन्त्रवाद, पूंजीवाद, साम्यवाद इत्यादि—यह सब क्या है और दुनिया पर क्या असर डाल रहे हैं? अन्तर्राष्ट्रीयता का भाव कितना बढ़ रहा है? यह सब मामूली सवाल हैं, जिनपर बहुतेरे मनुष्य कुछ-न-कुछ कहने को या लिखने को तैयार हो जायं; लेकिन मोटी बातें दोहराने से ज्यादा फायदा नहीं होता। अगर हम असल में इन सबको समझना चाहते हैं तो हमें गहराई में जाना पड़ेगा और ऐसी पुस्तकें हमें चाहिए, जो उस गहराई तक ले जा सकें।

फिर यह भी आवश्यक हो जाता है कि हम और देशों का आधुनिक हाल पढ़ें और जानें—यूरोप के देशों का, रूस का, अमेरिका का, चीन का, जापान का, मिस्र इत्यादि का। किसी भी देश का आजकल का हाल समझना तबतक करीब-करीब असम्भव है, जबतक हम उसका पुराना हाल न जानें। जो प्रश्न इस समय हमारे सामने हैं, उन सब की जड़ पुराने

ज़माने में है। इसलिए इतिहास जानना हमारे लिए जरूरी हो जाता है और इतिहास भी केवल एक या दो देशों का नही, बल्कि सारी दुनिया का।

हमें यह भी याद रखना है कि आजकल की दुनिया और हमारा सारा जीवन विज्ञान से बधा हुआ है। इसलिए विज्ञान के सिद्धात और उसके नये विचार तो हमें समझने ही हैं। मुझे इन बातों में बहुत दिलचस्पी रही है खासकर भौतिक विज्ञान और उसके नये खयालात में, जैसे रिलेटिविटी और क्वान्टम थ्योरी (Relativity and Quantum theory) जीव-विज्ञान (Biology), समाज-विज्ञान (Sociology), मनोविज्ञान (Psychology) और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण (Psycho-analysis)।

इन सब विषयों पर आजकल यूरोप-अमेरिका में हजारों किताबें हर साल निकल रही है। उनमें बहुतेरी मामूली किस्म की है, कुछ फ़िज़ूल है; लेकिन एक काफी तादाद ऊंचे दर्जे की भी है। विदेशी अखबारो और पत्रिकाओं में भी इन मजमूनों पर बहुत अच्छे लेख निकला करते हैं। मैं आशा करता हूं कि हिन्दी में इन विषयों पर जो नई पुस्तकें है, उनकी फेहरिस्त तैयार की जायगी। यह ज़ाहिर है कि स्कूल और कालेज के विद्यार्थियों के लिए जो किताबें इम्तहान पास करने को लिखी जाती है, उनकी इस फेहरिस्त में आवश्यकता नही।

मैंने कविता, उपन्यास और नाटक का या ऐसी ही और पुस्तकों का, जिनको शायद शुद्ध साहित्य कहा जाय, जिक्र

बात है । अन्य देशों के और अन्य भाषाओं के बारे में मैं
न-कुछ कह सकता हूं कि वहां साहित्य के प्रश्नों पर
ग़ौर और विचार-विनिमय आजकाल हो रहा है–अमेरिका
इंग्लैंड में, फ्रान्स में, रूस में, जर्मनी में, चीन में, टर्की
लेकिन अपने देश और अपनी मातृभाषा के बारे में मैं
नहीं कह सकता ।

मैं अपना मतलब साफ कर दूं यह दिखाकर कि अ
देशों में क्या-क्या प्रश्न साहित्य-संसार को परेशान कर रहे है
सब देशों में साहित्यकारों की बहुत-सी सभाएं और सम्मे
हैं–बहुतेरे राष्ट्रीय, कुछ अन्तर्राष्ट्रीय । कुछ अरसा हुअ
जून सन् १९३५ में पेरिस में एक बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय साहि
सम्मेलन हुआ था, जिसमें सारे यूरोप और अमेरिका से ले
आये थे । उसका नाम था—'International Congre
of Writers for the Defence of Culture.' (संस्कृ
की रक्षा के लिए लेखकों की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस) । इ
कांग्रेस की विषय-सूची से मालूम होता है कि यूरोप औ
अमेरिका के साहित्य-संसार में किन प्रश्नों पर ग़ौर हो रह
है । इस विषय-सूची की एक नकल मैं नीचे देता हूं । मैंने इसे
अंगरेजी ही में दे दिया है । इसलिए कि मैं उसका ठीक
अनुवाद नहीं कर सकता । मैं आशा करता हूं कि सम्पादकजी
अनुवाद कर लेंगे ।

सूची

Outline of subjects prepared for discussion
at the International Congress of Writers for

the Defence of Culture held in Paris in June 1935.

I. The Cultural Heritage.
(सांस्कृतिक उत्तराधिकार)

Tradition and invention. (परम्परा और आविष्कार)
The recovery and protection of cultural values. (सांस्कृतिक निधि की रक्षा और पुनरुद्धार)
The future of culture. (संस्कृति का भविष्य)

II. Humanism
(मानवता)

Humanism and Nationality. (मानवता और राष्ट्रीयता)
Humanism and individual. (मानवता और व्यक्ति)
Proletarian humanism. (श्रमजीवी मानवता)
Man and the machine. (मनुष्य और मशीन)
Man and leisure. (मनुष्य और अवकाश)
The writer and the workers. (लेखक और मजदूर)

III. Nation and Culture.
(राष्ट्र और संस्कृति)

The relations among national cultures. (राष्ट्रीय संस्कृतियों के पारस्परिक सम्बन्ध)
National cultures and humanism. (राष्ट्रीय संस्कृतियाँ और मानवता)
National cultures and social classes. (राष्ट्रीय संस्कृतियाँ और सामाजिक वर्ग)
Class and culture. (वर्ग और संस्कृति)
The literary expression of national minorities

VI. The Writer's Role in Society
(समाज मे लेखक का भाग)

His relation with the public. (जनता के साथ उसका सम्बन्ध)

The lessons of Soviet literature (सोवियट साहित्य की शिक्षाएं)

Literature and the proletariat (साहित्य और श्रमजीवी)

Writers and youth. (लेखक और नवयुवक)

The critical value of literature. (साहित्य का आलोचनात्मक मूल्य)

The positive value of literature (साहित्य का निरपेक्ष मूल्य)

Literature as a mirror and criticism of society (समाज के दर्पण और आलोचना के रूप में साहित्य)

VII. Literary Creation
(साहित्यिक रचना)

The influence of social change on artistic forms. (सामाजिक परिवर्तनों का कला के ढंगों पर प्रभाव)

Value of continuity and values of discontinuity. (साहित्य में निरवच्छिन्नता और विच्छिन्नता का मूल्य)

The different forms of literary activity (साहित्यिक कार्य के विविध रूप)

The social role of literature. (साहित्य का सामाजिक कार्य)

Imitation or creation of types (विशेष प्रकार के चरित्रों की सृष्टि और उनकी नकल)

The creation of heroes (नायकों की सृष्टि)

The new technical means of expression (साहित्य के प्रतिपादन में नवीन टेकनिकल साधन)

VIII. Writers & the Defense of Culture (लेखक और संस्कृति की रक्षा)

How their efforts can be co-ordinated (लेखकों के प्रयत्नों में कैसे साम्य पैदा किया जा सकता है)

इस विषय-सूची के मज़मूनों पर हिन्दी के साहित्याचार्यों की क्या राय है, यह जानकर मुझे और बहुत से लोगों को फ़ायदा होगा। मैं आशा करता हूं कि वे अपनी राय ेंगे।

जुलाई, १९३५

: १४ :

साहित्य की बुनियाद

हम लोग जो राजनीतिक क्षेत्र में काम करते हैं, वे देश के और जरूरी पहलू अक्सर भूल जाते हैं। किसी देश की असल जागृति उसके नये साहित्य से मालूम होती है, क्योंकि उसमें जनता के नये-नये विचार और उमगें निकलती हैं। जो जाति खाली पुराने साहित्य पर रहती है वह चाहे कितनी ही ऊंची क्यों हो, वह पूरी तौर से जीवित नहीं है और आगे नहीं बढ़ सकती। इसलिए अगर हिन्दुस्तान की आजकल की हालत का अन्दाजा किया जाय तो हमें उसके नये साहित्य को जो इस देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं में है, देखना चाहिए। इससे मालूम होता है कि एक नई जागृति हमारी सभी भाषाओं में है। हिन्दी, उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी इत्यादि। लेकिन फिर भी आजकल क्रान्तिकारी समय में वह कुछ कम मालूम होती है। अभी तक हमने कोई बहुत अच्छे राष्ट्रीय गाने भी नहीं पैदा किये जो कि ऐसे समय में अक्सर पैदा होते हैं। चीन में भयानक लड़ाई हो रही है और बीस बरस से वहां की हालत बहुत खराब है, फिर भी वहां के नये साहित्य ने बहुत तरक्की की है और वह जानदार है। इसी से असल अन्दाजा चीन के लोगों की अन्दरूनी शक्ति का है और हमें विश्वास होता है कि वह

किसी बाहरी हमले से दब नहीं सकती। इसलिए यह हमारे लिए जरूरी है कि हम अपने साहित्य की तरफ काफी ध्यान दें और उसको एक नया रूप दें, जिससे वह नये हिन्दुस्तान की हुलिया का एक आइना हो। हम हिन्दी और उर्दू या बंगला या किसी और भाषा की फिजूल बहसों में न पड़ें, बल्कि सभी की उन्नति की कोशिश करें। एक के बढ़ने से दूसरी भी बढ़ेगी। मुझे खुशी है कि उर्दू एकेडेमी उर्दू का यह काम करती है। इसी तरह से हिन्दी-साहित्य के लिए भी काम करना चाहिए। और दोनों को मिलकर हिन्दुस्तानी साहित्य की मजबूत बुनियाद डालनी चाहिए। इस बात की हमें बहुत फिक्र नहीं करनी चाहिए कि हिन्दी और उर्दू में इस समय कितना फर्क है, अगर दोनों का उद्देश्य एक है—यानी आम जनता की भाषा की तरक्की—तब तो दोनों करीब आती जायगी। बुनियादी बात यही है कि हमारे साहित्यकार इस बात को याद रखें कि उनको थोड़े-से आदमियों के लिए नहीं लिखना है; बल्कि आम जनता के लिए लिखना है। तब उनकी भाषा सरल होगी और देश की असली संस्कृति की ताकत उसमें आ जायगी। वह जमाना जाता रहा जब कि किसी देश की संस्कृति थोड़े-से ऊपर के आदमियों की थी। अब वह आम जनता की होती जाती है और वही साहित्य बढ़ेगा जो इस बात को सामने रखता है।

मुझे खुशी है कि दिल्ली में हिंदी-परिषद् की बैठक होने वाली है।[१] मैं आशा करता हू कि इसमें हमारे साहित्यकार

१. यह परिषद् १४, १५ और १६ अप्रैल १६३६ को हुई थी।

: १५ :

शब्दों का अर्थ

एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना बहुत कठिन काम है और सच पूछिये तो जरा भी गहरी बातों का ठीक-ठीक अनुवाद हो ही नहीं सकता। किसी भाषा का क्या काम है? वह हमको सोचने में मदद करती है। भाषा तो एक तरह से जमे हुए विचार हैं। उसके द्वारा हवाई खयालात एक मूर्ति बन जाते हैं। उसका दूसरा काम यह है कि उसके जरिये हम अपने विचारों का इज़हार कर सकें और उनको औरों तक पहुचा सकें; दो या अधिक आदमियों में खयालात की आमदरफ्त हो। भाषा और भी कई तरह से काम में आती है, लेकिन इसमें इस समय हमें जाने की आवश्यकता नहीं है। एक शब्द या एक वाक्य हमारे दिमाग में किसी-न-किसी मूर्ति की शक्ल में आता है। मामूली सीधे-सादे शब्द, जैसे मेज, कुर्सी, घोड़ा, हाथी आदि से, आसान और साफ मूर्तियां बनती हैं, और जब हम उनको कहते हैं तब सुनने वालों के दिमागमें भी अक्सर क़रीब-क़रीब वैसी ही मूर्तियाँ बन जाती हैं। इससे हम कह सकते हैं कि वे हमारे मानी समझ गए।

लेकिन जहाँ हम इन सीधे और आसान शब्दों से आगे बढ़े, वहां फौरन पेचीदगी पैदा हो जाती है। एक मामूली वाक्य भी दिमाग में कई तसवीरें पैदा करता है, और यह सम्भव है कि

भी या उनकी भाषाओं का क्या कहा जाय ? धोती-कुर्ता पहनने से एक अंग्रेज हिन्दुस्तानी की तरह नहीं सोचने लगता और न कोट-पतलून पहनने और छुरे-काँटे से खाने से एक हिन्दुस्तानी यूरोप की सभ्यता को ही समझ जाता है।

जब एक-दूसरे को समझने में यह कठिनाइयां है तब बेचारा अनुवादक क्या करे ? कैसे इन मुसीबतों को हल करे ?

पहली बात तो यह है कि वह इनको महसूस करे और यह जान ले कि अनुवाद करना सिर्फ कोष को देखकर शाब्दिक अर्थ देना नहीं है। उसको दोनों भाषाओं को अच्छी तरह समझना है और उनके पीछे जो संस्कृति है, उसको भी जानना है। उसको कोशिश करनी चाहिए कि अपने को भूल जाय और मूल लेखक की विचार-धाराओं में गोते खाकर फिर उन विचारों को अपने शब्दों में दूसरी भाषा में लिखे।

मेरा खयाल है कि हमारे अनुवादक लोग इस गहराई में जाने की कोशिश कम करते हैं और ज्यादातर अखबारी तौर पर अनुवाद करते हैं। अक्सर ऐसे शब्द और वाक्य मुझे हिन्दी में मिलते हैं, जिनको देखकर मुझे आश्चर्य होता है। 'ट्रेड यूनियन' का अनुवाद मैंने 'व्यापार-संघ' पढ़ा। यह शब्दों के हिसाब से बिलकुल सही है, लेकिन जो इस चीज को नहीं जानता, वह कभी नहीं समझ सकता कि व्यापार-संघ व्यापारियों का नहीं; बल्कि मजदूरों का है। ट्रेड यूनियन शब्दों के पीछे सौ बरस से अधिक का इतिहास है। जो उसको कुछ जानता है, वह समझेगा कि कैसे यह नाम पड़ा। फ्रांस में यह नाम नहीं है, न इसका अनुवाद है। वहां इसको Syndicate

सत्य का, वाक्य का, चाल-चलन का, उपन्यास का—ऐसे ही अगणित प्रकार के सौन्दर्य कहे जा सकते हैं। इन सब बातों में एकता क्या है ? अगर यह कहा जाय कि जो चीज लोगों को पसन्द हो और उनको प्रसन्न करे, उसी मे सौन्दर्य है तो यह तो एक बिलकुल गोल बात हो गई, फिर लोगो की राय एक-सी नही होती।

हर भाषा में बहुत-से शब्द ऐसे गोल हैं, जिनके कई मानी हो सकते हैं। कुछ ऐसे हैं, जो बिलकुल खराब हो गये हैं और जिनके खास मानी रहे ही नही। कुछ भिखमंगे शब्द हैं, जिनकी निस्वत मैथ्यू आर्नल्ड ने कहा था—"Terms thrown out, so to speak, at a not fully grasped object of the speakers conciousness." कुछ शब्द खानाबदोश (nomads) होते हैं, जो इधर-उधर फिरते हैं, जिनके कोई खास मानी नही हैं।

ऐसे शब्द हर भाषा मे होते हैं और जिन लोगो के विचार साफ नही होते, वे खास तौर से इनका प्रयोग करते हैं। वे अपने दिमाग की कमजोरी को लम्बे और गोल और किसी कदर बेमानी शब्दो में छिपाते हैं। जिस भाषा में ऐसे शब्दों का अधिक प्रयोग हो (मेरा मतलब इन समय सौन्दर्य, सत्य आदि से नहीं है) उसकी शक्ति कम हो जाती है।। उसके साहित्य में तलवार की तेजी नही होती और न वह तीर की तरह से कमान को छोड़कर अपना मतलब हल करता है।

हम कोशिश कर सकते हैं कि इन घिसे हुए, भिखमगे और अवारा, शब्दों को हम अपने बोलने और लिखने में, जहाँ

तक हो सके, पनाह न दें। अपराध तो बेचारे शब्दों का क्या है, वे तो कम सीखे हुए और अनुशासन-रहित दिमागों के हैं। बोलने वाले और लिखनेवाले भाषा को बनाते हैं; लेकिन फिर उतना ही असर उस भाषा का उन नये आदमियों पर होता है, जो उसका प्रयोग करते हैं। पुरानी भाषाओं में संस्कृत, ग्रीक, लेटिन आदि में—शब्दों की या विचारों की ढील बहुत कम मिलती है, उनमें एक चुस्ती और हथियार की-सी तेजी पाई जाती है और बेकार शब्द बहुत कम मिलते हैं। इससे उनमे एक शान और बड़प्पन आजाता है, जो कि खास असर पैदा करता है। आजकल की भाषाओं में शायद फ्रेंच सबसे अधिक साफ-सुथरी है और फ्रेंच लोग प्रसिद्ध हैं अपने मानसिक अनुशासन और अपने विचारों को बहुत शुद्धता से प्रकट करने के लिए।

जो किसी कदर निकम्मे शब्द हैं, उनका सामना तो हम इस तरह से करें; लेकिन जो हमारे ऊंचे दर्जे के abstract शब्द हैं, उनका क्या किया जाय? वे हमें प्रिय हैं, वे हमारे लिए ज़रूरी हैं और अक्सर हमें उभारने में वे सहायता देते हैं। लेकिन फिर भी वे गोल हैं और कभी-कभी इतने मानी रखते हैं कि बेमानी हो जाते हैं। ईश्वर ही के खयाल को लीजिए। हर मजहब में और हर भाषा में उसकी तारीफ में हजारों शब्द कहे गये हैं। मालूम होता है कि इन्सान का दिमाग इस खयाल को समझ नहीं सका और अपनी कमजोरी छिपाने को कोष खोलकर जितने बड़े और जोरदार शब्द मिले, वे सब ईश्वर के मत्थे डाल दिए गये। उन सब शब्दों का

अर्थ समझना मानसिक शक्ति के बाहर था; लेकिन बहुत-कुछ कह और लिख देने से एक तरह का सन्तोष हुआ कि हमने अपना फर्ज अदा कर दिया और कम-से-कम ईश्वर को अब हमसे कोई शिकायत नही करनी चाहिए। अल्लाह के हजार नाम हैं, गोया कि नाम बढ़ाने से असलियत ज्यादा साफ हो जाती है। God को अंग्रेजी में Absolute, Omnipotent, Omnicient, Omnipresent, Perfect, Unlimited, Immutable, Eternal इत्यादि कहते हैं। यह सब सुनकर किसी कदर दिल सहम अवश्य जाता है; लेकिन अगर इन शब्दों पर कोई गौर करने की धृष्टता करे तो उसकी समझ में बहुत-कुछ नही आता। मनोविज्ञान के प्रसिद्ध अमेरिकन पंडित विलियम जोज़ ने लिखा है:—

"The ensemble of the metaphysical attributes imagined by the theologians is but a shuffling and matching of pedantic dictionary adjectives. One feels that in the theologians' hands they are only a set of titles obtained by a mechanical manipulation of synonyms; verbality has stepped into the place of vision, professionalism into that of life."

इसी तरह से इटालियन दार्शनिक क्रोम ने परेशान होकर sublime शब्द के मानी यह बतलाये हैं—"The sublime is every-thing that is or will be so called by those who have employed or shall employ the name." इसके बादकुछ ज्यादा कहने की गुंजाइश नही रह जाती और हर एक को इतमीनान हो जाना चाहिए।

हर सूरत से यह ऊंचे दर्जे की हवाई वस्तु मामूली आदमी की पहुंच के बाहर है। बड़े पंडित और आचार्य तय करें कि अमूर्त शब्दों का प्रयोग हो और उनका कैसे अनुवाद हो। लेकिन फिर भी हम मामूली आदमियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि शब्द खतरनाक वस्तु है और जितना ही वह अमूर्त है, उतना ही वह हमको धोखा दे सकता है। शायद सबसे अधिक खतरनाक शब्द धर्म या मजहब है। हर एक आदमी अपने दिल में अलग ही उनके मानी निकालता है। हरएक के मन में नई तसवीरें रहा करती हैं। किसी का ध्यान मन्दिर, मसजिद या गिर्जे पर जायेगा, किसी का चन्द पुस्तकों पर, या पूजा-पाठ पर, या मूर्त्ति पर, या दर्शन-शास्त्र पर, या रिवाज पर, या आपस की लड़ाई पर। इस तरह से एक शब्द लोगों के दिमागों में सैकड़ों अलग-अलग तसवीरें पैदा करेगा और उनसे तरह-तरह के विचार निकलेंगे। यह तो भाषा की कमजोरी मालूम होती है कि एक ही शब्द ऐसा असर पैदा करे। होना तो यह चाहिए कि एक शब्द का सम्बन्ध एक ही मानसिक तसवीर से हो। इसके मानी यह हैं कि धर्म या मजहब के सौ टुकड़े हों और हरएक टुकड़े के लिए अलग शब्द हों। सुनने में आया है कि अमेरिका की पुरानी भाषा में प्रेम करने के लिए दो सौ से अधिक शब्द थे। उन सब शब्दों का हम अब कैसे ठीक अनुवाद कर सकते हैं?

शब्दों के प्रयोग के बारे में किसी कदर महात्मा गांधी भी गुनहगार हैं। यों तो जो कुछ वे कहते हैं या लिखते हैं, वह साफ-सुथरा और प्रभावशाली होता है। उसमें फिजूल शब्द

नहीं होते और न कोई कोशिश होती है सजावट देने की। इसी सफाई में उसकी शक्ति है। लेकिन जब वे ईश्वर या सत्य या अहिंसा की चर्चा करते हैं—और वे अकसर करते हैं—तब उस मानसिक सफाई में कमी हो जाती है। God is truth, Truth is God, Non-violence is truth, Truth is non-violence, अर्थात् ईश्वर सत्य है, सत्य ईश्वर है, अहिंसा सत्य है, सत्य अहिंसा है—यह सब उन्होंने कहा है। इस सब के कुछ-न-कुछ मानी अवश्य होंगे; लेकिन वे साफ बिलकुल नहीं हैं। मुझको तो इस तरह के शब्दों का प्रयोग करना उनके साथ कुछ अन्याय करना मालूम होता है।

अगस्त, १९३५

ठीक या यथार्थ होती है, वह लोगो को ठीक-ठीक विचार करनेवाले बनाती है। शब्दो या वाक्यो के अर्थ मे यथार्थता और निश्चितता न होने से विचारो की गड़बड़ पैदा होती है और उसके परिणाम-स्वरूप काम भी वैसा ही होता है।

किसी भाषा को ऐसी तग कोठरी मे बद कर दिया जाय, जिसमें कोई दरवाजे और खिड़किया न हो और प्रगतिशील परिवर्तन आने की गुजाइश न रहे तो उसमें निश्चितता और छटा भले ही हो सकती है, परन्तु बदलते हुए वातावरण और जनसाधारण के साथ उसका सम्पर्क टूट जाने की सभावना रहती है। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि उसमें ओज नही रहता और एक तरह का बनावटीपन आ जाता है। यह किसी भी समय अच्छी बात न होगी, परन्तु मौजूदा प्राणवान और तेजी से बदलने वाले युग में, जिसमे हमारे आसपास की लगभग सभी चीजे बदल रही है, तो बद कमरे में भाषा मर ही जायगी।

पहले के जमानो की ललित भाषाओ मे कई अच्छी बाते थी, परन्तु वे ऐसे लोकतत्री युग के बिल्कुल अनुकूल नही है, जिसमें हमारा उद्देश्य आम जनता को शिक्षित बनाना है। इसलिए भाषा को दो काम पूरे करने ही चाहिए उसका आधार उसकी प्राचीन धातुए हो और साथ ही वह आम जनता की, न कि कुछ चुने हुए साहित्यकारो की, बढती हुई जरूरतो के साथ बदलती और बढती हो और असल मे उसी की भाषा हो। विज्ञान, शिल्पविज्ञान (टेकनॉलाजी) और विश्वव्यापी समागम के इस युग में यह और भी जरूरी है। जहा तक सभव

भाषा संसार को किस दृष्टि से देखती है— ... करनेवाली, आत्मनिर्भर, अलग-अलग रहनेवा... या उससे उलटी है ? मेरे खयाल से हमारा ल... ऐसी ज़बान होनी चाहिए, जो इनसे विप... हो और जिसमें विकास की बड़ी शक्ति हो। ... और किसी भाषा से अंग्रेजी में यह सग्राहकता, ... और विकास का गुण ज्यादा है। इसीलिए भाषा ... से उसका इतना बड़ा महत्व है। मैं चाहता हूं ... भाषा भी संसार के सामने इसी रूप में आये।

जिस ढंग से भाषा के सवाल पर आजकल ... में वाद-विवाद होता है, उसपर मुझे बहुत दुःख है ... दलीलों के पीछे पाण्डित्य बहुत थोड़ा है और संस्कृ... समझ तो और भी कम है। उनमें भविष्य की कोई ... या कल्पना नहीं है। भाषा को एक प्रकार की विस्तृत ... कारी ही अधिक माना जाता है और राष्ट्रवाद का विरु... यह मांग करता है कि जहां तक हो सके उसे संकीर्ण अ... सीमित बनाया जाय। उसके विस्तार की किसी भी कोशि... को इस किस्म के राष्ट्रवाद के खिलाफ गुनाह करार देकर ... उसकी निन्दा की जाती है। अक्सर भाषा का सौन्दर्य इसमें ... मान लिया जाता है कि वह अत्यन्त आलंकारिक हो और ... उसमें लम्बे और पेचीदा शब्द-प्रयोग हों। उस ... शक्ति या गौरव बहुत कम दिखाई ... पड़ती है कि उसके ...

रचनात्मक कार्य बहुत ही कम होता है। इस अवसर
न मानें इ' को शांति करते हैं। कुछ कुछ नहीं करते
ही दूसरा कोई भाषा के विकास की कोशिश कर
पसन्द भी नहीं करते। अन्त में तो किसी भाषा का
उसकी अपनी योग्यता से होगा, न कि कानूनों और दबाव
इसलिए किसी भाषा की असली सेवा उसका मूल्य, उ
व्यापकशीलता और उसके भीतरी गुण बढ़ाना है।

संस्कृत जितनी ही महान् हो और हम उसके अध्ययन को जितना ही प्रोत्साहन देना चाहें, जैसा हमें देना चाहिए, तो भी यह जीवित भाषा नहीं हो सकती। लेकिन जैसे यह अब तक रही है, उसी तरह आगे भी हमारी अधिकांश भाषाओं का आधार और भीतरी सार रहनी चाहिए। यह अनिवार्य है, लेकिन उसे जबर्दस्ती जनता पर लादना न तो अनिवार्य है और न वांछनीय और इसका नतीजा बुरा हो सकता है।

पिछली कुछ सदियों में हमारी कई प्रान्तीय भाषाओं और खास तौर पर हिन्दुस्तानी के विकास में फ़ारसी का महत्वपूर्ण भाग रहा है और उसने किसी हद तक हमारे विचार करने के तरीकों पर भी असर डाला है। यह हमारी एक कमाई है और इससे उतनी मात्रा में हमारी पूजी बढ़ी है। हमें यह याद रखना चाहिए कि कोई भाषा संस्कृत के इतनी नजदी- नहीं है, जितनी फ़ारसी है और वैदिक संस्कृत व प्राची पहलवी जितनी एक-दूसरी के नजदीक हैं; उतनी वैदिक संस्कृत और उच्च कोटि की साहित्यिक संस्कृत भी नहीं है। इसलिए दोनों का एक-दूसरी के क्षेत्र में

उनका अपना शब्द, पद और विचार दूसरे प्रान्तों
तौर पर पायेंगी, अंग्रेजी तथा दूसरी विदेशी भा
से भी लिए गए होंगे। यहाँ तक पारिभाषिक शब्दों का
सब में रहते हों हमें ऐसे हर शब्द को ले लेना चाहिए
आम लोगों के व्यवहार में चालू हो चुका है। नए शब्द गढ़ने
भी हम लोगों के आम इस्तेमाल के शब्दों और मांगों को ध्यान
के साथ समझौता मेल साधना होगा और पारिभाषिक
शब्दों के बारे में हमें जहां तक समझ हो दुनिया की जो एक
भाषा आज बन रही है, उससे अलग नहीं होना चाहिए।

यह अच्छा होगा कि हम बुनियादी शब्दों की एक ऐसी सूची, कोई ३०००, जमा कर लें, जो आम लोगों द्वारा इस्तेमाल किये जानेवाले, सुपरिचित और साधारण शब्द समझे जा सकें। एक ही विचार के लिए अक्सर दो पर्यायवाची शब्द भी हो सकते हैं, बशर्ते कि दोनों आम तौर पर काम में लिए जाते हों। यह वह बुनियादी शब्दकोश होना चाहिए, जिसे अखिल भारतीय भाषा के ज्ञान की इच्छा रखने— हर शख्स को जानना चाहिए।

ऊपर बताये ढंग पर पारिभाषिक शब्दों की एक औ[र] सूची तैयार होनी चाहिए। यहां मैं यह जरूर कहूंगा कि आज पारिभाषिक शब्दों के लिए जो नये शब्द इस्तेमाल हो रहे हैं, उनमें से बहुत से इतने असाधारण रूप में बनावटी और सचमुच बेमानी हैं कि मुझे उनसे डर लगता है। इसका कारण यह है कि उनके पीछे कोई पृष्ठभूमि या इतिहास नहीं है।

है, [illegible] हुए और [illegible] [illegible] [illegible] हिन्दुस्तानी [illegible]

रही बात लिपि की, तो [illegible] लिपि होगी। लेकिन इसमें भी यह स्पष्ट है कि [illegible] बनाना सांस्कृतिक और राजनैतिक दोनों दृष्टियों [illegible] इसलिए यह आवश्यक है कि उर्दू लिपि को [illegible] चाहिए और जहां मांग हो, वहां उसे सिखाया जाना [illegible] इन सभी लोगों से ये दोनों लिपियां सीखने को नहीं कह[illegible] यह बहुत भारी बोझ हो जायगा। लेकिन उर्दू लि[illegible] खास तौर पर इस्लामिया और दूसरे [illegible] जहां काफी संख्या चाहती हो वहां स्कूलों में पढ़ाने की [illegible] मंजूर करना चाहिए।

यह बात हमारी साधारण भाषा सम्बन्धी नीति से [illegible] जाती है। यह नीति कांग्रेस और विधान-सभा दोनों में [illegible] घोषित हो चुकी है कि हर बच्चे को प्रारम्भिक शिक्षा उसकी मातृभाषा में दी जानी चाहिए, बशर्ते कि किसी खास जगह पर इसे व्यावहारिक बनाने के लिए काफी तादाद में छात्र हों। इस प्रकार बम्बई या कलकत्ता या दिल्ली में तामिलभाषी बच्चों की काफी तादाद हो तो उन्हें तामिल में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पाने का मौका मिलना चाहिए। अगर हिन्दुस्तान के किसी हिस्से में ऐसे बच्चों की काफी संख्या है, जिनकी घर की जबान उर्दू है तो उन्हें प्रान्त की भाषा के अलावा उर्दू लिपि सिखाना चाहिए। यह सिद्धान्त [illegible]

पर जितना जल्दी अमल हो सके उतना अच्छा है। आजकल बहुत सी कठिनाइयां पैदा होती हैं, खास तौर पर उन इलाकों में जहां दो प्रान्त मिलते हैं । इस सरहद के दोनों तरफ दो भाषाएं बोलनेवाला प्रदेश होता है। दूसरी किसी जगह के बनिस्बत यहां यह ज्यादा जरूरी है कि प्रारम्भिक शिक्षा बच्चों को मातृभाषा में दी जाय ।

मेरे ख़याल से हमारे लिए किसी व्यापक पैमाने पर रोमन लिपि को अपनाना संभव नहीं है; लेकिन यह याद रखना चाहिए कि फौज में रोमन लिपि बड़ी सफलतापूर्वक इस्तेमाल की गई है। फौज में रोमन लिपि सिखाना बड़ा आसान पाया गया है और वह एक प्रकार की एकता पैदा करनेवाली शक्ति साबित हुई है। इसलिए रोमन लिपि की संभावनाओं की खोज करना और जहां संभव व वांछनीय हो, वहां उसे इस्तेमाल करना अच्छा होगा।

इस लेख के शुरू में मैंने कहा है कि मैं एक लेखक की हैसियत से यह लिख रहा हूं। यहां दो शब्द लेखकों के लिए, खास तौर पर हिन्दी और उर्दू के लेखकों के लिए, कह दूं। मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ है कि हमारे बढ़िया-से-बढ़िया और होनहार लेखकों को प्रकाशकों के हाथों कैसी-कैसी मुसीबतें उठानी पड़ी हैं और किस तरह इन लोगों ने उनका शोषण किया है। जहां पत्रकार खुशहाल हैं, वहां सच्ची प्रतिभावाले लेखक के लिए तरक्की का बहुत कम मौका होता है।

मुझे ऐसी मिसालें मालूम हैं कि प्रकाशकों ने हिन्दी की

किताबों का कानूनी अधिकार इसलिए कौड़ियों में खर
कि गरीब लेखक भूखों मर रहा था और उसके साम
कोई उपाय नहीं था। उन प्रकाशकों ने इन पुस्तकों से
रुपया कमा लिया तो भी लेखक भूखों ही मरता रहा
खयाल से यह बहुत बड़ी बदनामी और सार्वजनिक कलंक
बात है और मैं ऐसी पुस्तकों के प्रकाशकों से अपील कर
कि वे लेखकों से ऐसा बेजा फायदा न उठायें।

प्रकाशक तभी फले-फूलेंगे, जब लेखक खुशहाल होंगे
प्रकाशको के दृष्टिकोण से भी लेखक को भूखो मरने देना या
उसे कोई योग्य काम करने से रोकना मूर्खताभरी नीति है।
लेकिन राष्ट्रीय हित के खयाल से यह सवाल और भी अहम
है और यह देखना राष्ट्रका काम है कि हमारे प्रतिभाशाली
लेखकों को अच्छा काम करनेका मौका मिले।

फरवरी, १९४९

: १७ :

स्नातिकायें क्या करें ?

बहुत वर्ष पहिले मुझे महिला-विद्यापीठ के हाल के शिला-रोपण का सौभाग्य मिला था। इन हाल ही के बरसो में इतनी बातें हो गई है कि समय का मुझे ठीक-ठीक अन्दाज नही रहा और थोड़े साल भी बहुत ज्यादा लगते है। तब से बराबर मैं राजनैतिक बातों में और सीधी लड़ाई में फंसा रहा हू और हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई मेरे दिमाग पर चढी रही है। महिला-विद्यापीठ से मेरा संबंध नही रह सका। पिछले चार महीनों में, जिनमें मै जेल की दीवारो के बाहर की विस्तृत दुनिया मे रहा हू, मेरे लिये बहुत-से बुलावे आये है और बहुत-सी सार्वजनिक कार्रवाइयों में हिस्सा लेने के निमंत्रण मिले है। इन बुलावों की ओर मैंने ध्यान नही दिया और सार्वजनिक कार्रवाइयों से भी दूर रहा हू, क्योंकि मेरे कान तो बस एक ही बुलावे के लिए खुले थे और उसी एक उद्देश्य में मेरी सारी शक्ति लगी थी। वह बुलावा था हमारी दुखी और बहुत समय से कुचली जाने वाली मातृभूमि—भारत का और खास तौर से हमारी दीन शोषित जनता का और वह उद्देश्य था हिन्दुस्तानियों की मुकम्मिल आजादी।

इसलिए इस अहम मसले से हटकर दूसरी और मामूली बातों की ओर जाने से मैंने इन्कार कर दिया था। उन बातों

में से कुछ अपने सीमित क्षेत्र में महत्त्व रखती थीं;
जब श्री मगनलाल अग्रवाल मेरे पास आये और जोर
कि मैं महिला-विद्यापीठ का दीक्षांत-भाषण दूं ही तो उन
अपील का विरोध करना मुझे मुश्किल जान पड़ा; क्यों
उस अपील के पीछे हिन्दुस्तान की लड़कियां अपनी जिंदगी की
दहलीज पर चिर-काल के बन्धन से स्वतन्त्र होने की कोशि
करती और विवशता के साथ भविष्य को ताकती दिखाई दीं,
यद्यपि जवानी के उत्साह से उनकी आंखों में आशा

इसलिए खास हालत में और विवशता के साथ
हुआ। मुझे आशा नहीं थी कि उससे भी जरूरी बुलाव
कहीं से नहीं आजायगा, और अब मैं देखता हूं कि वह
बुलावा बेहद पीड़ित बंगाल के सूबे से आ गया है।
जाना मेरे लिए जरूरी है और यह भी मुमकिन है कि महि
विद्यापीठ के दीक्षांत-समारोह के वक्त पर न लौट सकूं
इसके लिए मुझे दुःख है और मैं यही कर सकता हूं कि उस
लिए सन्देश छोड़ जाऊं।

अगर हमारे राष्ट्र को ऊंचा उठना है तो वह कैसे उठ
सकता है जब तक कि आधा राष्ट्र—हमारा महिला-समा
पिछड़ा रहता है, अज्ञानी और कुपढ़ रहता है? हमारे व
किस प्रकार हिन्दुस्तान के संयत और प्रवीण नागरिक
सकते हैं, अगर उनकी मातायें खुद संयत और प्रवीण नहीं
? हमारा इतिहास हमें बहुत-सी चतुर और ऐसी औरतों
हवाले देता है जो सच्ची थीं और मरते दम तक
। उनके उदाहरणों का हमारे

प्रेरणा मिलती है। फिर भी हम जानते हैं कि हिन्दुस्तान में दूसरी जगहों में औरतों की हालत कितनी दीन है। हमारी सभ्यता, हमारे रीति-रिवाज, हमारे कानून सब आदमी के बनाये हुए हैं और आदमी ने अपने को ऊंची हालत में रखने का और स्त्रियों के साथ बर्तनों और खिलौनों-जैसा बर्ताव करने और अपने फायदे और मनोरंजन के लिए उनका शोषण करने का पूरा ध्यान रखा है। इस लगातार बोझ के नीचे दबी रहकर औरतें अपनी शक्ति पूरी तरह से नहीं बढ़ा पाई और तब आदमी उन्हें पिछड़ी हुई होने का दोष देता है।

धीरे-धीरे कुछ पश्चिमी देशों में औरतों को आजादी मिल गई है; लेकिन हिन्दुस्तान में हम अब भी पिछड़े हुए हैं, हालांकि उन्नति की भावना यहां भी पैदा हो गई है। यहां पर बहुत-सी सामाजिक बुराइयां हैं। जिनसे हमें लड़ना है और बहुत-से पुराने रीति-रिवाज जो हमें बांधे हुए हैं और जो हमें अवनति की ओर ले जाते हैं, उन्हें तोड़ना है। पुरुष और स्त्रियां, पौधों और फूलों की तरह आजादी की धूप और ताजी हवा में ही बढ़ सकती हैं। विदेशी शासन की अन्धेरी छाया और गला घोंटनेवाले वायुमण्डल में तो वे अपनी ताकत क्षीण करते हैं।

इसलिए सबके सामने बड़ी समस्या यह है कि किस तरह हिन्दुस्तान को आजाद करें और हिन्दुस्तानी जनता पर लदे हुए बोझ को कैसे दूर करें? लेकिन हिन्दुस्तान की औरतों के लिए एक और काम है, वह यह कि वे आदमी के बनाए रीति-रिवाजों और कानूनों के जुल्म से अपने को मुक्त करें।

दूसरी लड़ाई को उन्हें खुद ही लड़ना होगा; क्योंकि
मे उन्हें मदद मिलने की सम्भावना नही है।

पदवीदान के अवसर पर मौजूदा बहुत-सी लड़कियां
स्त्रियां अपनी पढ़ाई खत्म कर चुकी होंगी, डिगरी ले चु
होगी और एक बड़े क्षेत्र में काम करने के लिए अपने
तैयार कर चुकी होगी। इस विस्तृत दुनिया के लिए वे कि
आदर्शों को लेकर जायगी और कौन-सी अन्दरूनी भावना
उन्हें स्वरूप देगी और उनके कामों की देख-भाल करेगी ?
मुझे डर है, उनमें से बहुत-सी तो रोजमर्रा के रूखे घरेलू कामों
मे फस जायगी और कभी-कभी ही आदर्शों या दूसरे दायित्वो
की बात सोचेंगी। बहुत-सी सिर्फ रोटी कमाने की बात
सोचेंगी। इसमें सन्देह नही कि ये दोनों चीजे भी जरूरी हैं;
लेकिन अगर महिला-विद्यापीठ ने सिर्फ यही अपने विद्यार्थि
को सिखाया है तो उसने अपने उद्देश्य को पूरा नही किया
अगर किसी विद्यालय का औचित्य है तो वह यह कि वह सचा
आजादी और न्याय के पक्ष में शूरवीरो को तैयार करे और
दुनिया में भेजे। वे शूरवीर दमन और बुराइयों के विरुद्ध
निर्भय युद्ध करें। मुझे उम्मीद है कि आप मे से कुछ ऐसी
है। कुछ ऐसी भी है जो अन्धेरी और बुरी घाटियो में पड़ी
रहने की बनिस्वत पहाड़ पर चढ़ना और खतरों का मुकाबिला
करना न्द करेगी।

मारे विद्यालय पहाड़ पर चढने में प्रोत्साहन
ो चाहते है कि नीचे के देश और घाटी सुरक्षित
। और आजादी को ...

हमारे विदेशी शासकों के सच्चे बच्चों की भांति ऊपर से शासन और व्यवस्था का थोपा जाना उन्हें पसन्द है । इसमे ताज्जुब ही क्या है, अगर उनके काम निराशा-जनक, बेकार और हमारी बदलती हुई दुनिया में ठीक नही बैठते हैं ।

हमारे विद्यालयो की बहुतो ने अलोचना की है । उनमे से बहुत-सी आलोचनाए ठीक भी हैं । वास्तव में मुश्किल से किसी ने हिन्दुस्तान के विश्वविद्यालयो की तारीफ की है । लेकिन आलोचकों ने भी विद्यालय की शिक्षा को उच्चवर्गीय साधन माना है । उसका जनता से कोई सम्बन्ध नही है। शिक्षा की जड़ें धरती में होकर नीचे जनता तक पहुचनी चाहिए, अगर शिक्षा को वास्तविक और राष्ट्रीय होना है । हमारी विदेशी सरकार और पुरानी दुनिया के रीति-रिवाज के कारण यह आज संभव नहीं है, लेकिन आप में से जो विद्यापीठ मे निकलकर दूसरों की शिक्षा में मदद देंगी, उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए और तब्दीली के लिए कोशिश करनी चाहिए ।

कभी-कभी कहा जाता है, और मेरा विश्वास है कि विद्यापीठ खुद इस बात पर जोर देता है, कि स्त्रियों की शिक्षा आदमियों की शिक्षा से जुदा होनी चाहिए । स्त्रियों को घरेलू कामो के लिए और खूब प्रचलित शादी के पेशे के लिये तैयार किया जाना चाहिए । मैं स्त्री-शिक्षा के इस सीमित और एक-पक्षीय विचार से सहमत नही हो सकूगा । मेरा विश्वास है कि स्त्रियों को मानवीय कामों के प्रत्येक विभाग में सर्वोत्कृष्ट शिक्षा मिलनी चाहिए और उन्हें तैयार किया जाना चाहिए

विवाह व तलाक दोनों में और दोनों के [illegible] में बरा बराबर और न स्त्री को केवल [illegible] समझने और स्त्री के लिए एक दास अधिक [illegible] मानने की आदत को दूर कर सकेंगे। सभी स्त्रियों को आजादी मिल सकती है। आज राजनीतिक की अधिकतर आर्थिक हालतों पर निर्भर होती है अगर स्त्री आर्थिक रूप से स्वतन्त्र नहीं है और अपनी आ जीविका स्वयं पैदा नहीं करती तो उसे अपने पति का और कि पर निर्भर रहना होगा और दूसरों पर निर्भर रहने वाले क आजाद नहीं होते। स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध मित्र साथी का होना चाहिए, एक-दूसरे पर निर्भर होने क नहीं।

विद्यापीठ की स्नातिकाओ बाहर जाकर आपका क कर्तव्य होगा? क्या आप सब बातों को जैसी वे हैं, चाहे जितन बुरी वे हों, स्वीकार कर लेंगी? क्या अच्छी बातों के प्रति हार्दिक और बेकार सहानुभूति दिखाकर ही संतुष्ट हो जायेंग और कुछ करेंगी नहीं? क्या अपनी शिक्षा का औचित्य नहीं दिखायेंगी और बुराइयां जो आपको घेरे हुए हैं उनका विरोध करके अपनी शक्ति आप साबित नहीं करेंगी? क्या आप पर्दे के, जो हैवानी युग का एक दोषपूर्ण अवशेष है और जो हमारी बहुत-सी बहनों के दिलो-दिमाग को जकड़े हुए है, टुकड़े टुकड़े नहीं कर डालेंगी और उन टुकड़ों को नहीं जला देंगी? अस्पृश्यता और जाति से, जो मानवता का पतन करती हैं और जो एक वर्ग को दूसरे वर्ग का शोषण करने में मदद देती हैं, क्या आप नहीं लड़ेंगी और इस तरह मुल्क में बराबरी

पैदा करने में मदद नहीं देंगी ? हमारे शादी के बहुत से कानून हैं और प्राचीन रीति-रिवाज है, जो हमें पीछे रोके हुए हैं और खास तौर से हमारी स्त्रियों को कुचलते हैं। क्या आप उनसे मोरचा नहीं लेंगी और उन्हें मौजूदा हालतों के साथ नहीं लायेंगी ? क्या आप खुली हवा में खेल-कूद और व्यायाम और रहन-सहन से स्त्रियों के शरीर को पुष्ट करने के लिए, जिससे हिन्दुस्तान में मजबूत, तन्दुरुस्त और सुन्दर स्त्रियां और खुश बच्चे हों, आप शक्ति और दृढ़ता के साथ नहीं लड़ेंगी ? और सबसे ऊपर, क्या आप राष्ट्रीय और सामाजिक स्वतन्त्रता की लड़ाई में, जो आज हमारे मुल्क में हलचल मचाये हुए है, एक बहादुराना हिस्सा नहीं लेंगी ?

ये बहुत-से सवाल मैंने आपसे किये हैं, लेकिन उनके जवाब उन हजारों बहादुर लडकियों और स्त्रियों से मिल गये हैं जिन्होंने पिछले चार सालों में हमारी आजादी की जंग में खास हिस्सा लिया है। सार्वजनिक काम करने की आदत न होने पर भी घर-बार का सहारा छोडकर हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई में अपने भाइयों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर खड़ी हुई उन बहनों को देखकर कौन नहीं कांप उठा ? बहुत-से आदमियों को, जो अपने को आदमी कहते थे, उन्होंने लज्जा से भर दिया और दुनिया को घोषित कर दिया कि हिन्दुस्तान की औरतें भी अपनी लम्बी नींद से उठ बैठी हैं और अब उनके अधिकारों से इन्कार नहीं किया जा सकता।

हिन्दुस्तान की औरतों ने मेरे सवालों के जवाब दे दिए

है और इसलिए सक्रिय विरोध का [illegible] और [illegible], के [illegible] अधिकारपूर्ण बनाता है और [illegible] यह है कि [illegible] होती है कि [illegible] अधिकारों के [illegible] को [illegible]-लिए रहें, जब तक कि उनकी [illegible] [illegible] पर [illegible] और [illegible] देश में तब तक न [illegible] जाय।

: १८ :

सामाजिक हित

दर असल सामाजिक भलाई है क्या? मैं तो इसे समाज की खुशहाली ही समझता हूं। यदि ऐसा है तो इसमें वे सभी चीजें आ गई जो एक व्यक्ति सोच सकता है—आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक। इस तरह यह प्रश्न मानव-कार्यप्रणाली और मानव-सम्बन्ध के सारे क्षेत्र को ढक लेता है। फिर भी यह व्यापक अर्थ कभी इसके साथ लगाया नहीं जाता और हम इन शब्दों को बहुत ही अधिक सीमित अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। सामाजिक कार्यकर्त्ता या कार्यकर्त्री अधिकतर अपने को ऐसे कार्यक्षेत्र में कार्य करते हुए समझते हैं, जो राजनैतिक कार्य और आर्थिक सिद्धान्त से बिलकुल भिन्न है। वह पीडित मानवता को राहत पहुचाने की चेष्टा करेंगे, रोग और गन्दगी के खिलाफ जिहाद करेंगे, बेकारी और वेश्यावृत्ति को मिटाने की कोशिश करेंगे। वर्तमान अनीति में कमी कराने के लिये वे न्याय में भी परिवर्तन कराने का प्रयत्न करेंगे; पर वे समस्या के मूल तक कभी न जायगे, क्योंकि वर्तमान समाज के स्वरूप को जैसे-का-तैसा स्वीकार कर वे उसके महान अन्यायों को हलका करने में प्रयत्नशील रहते हैं।

हमें उस महिला पर गौर करने की जरूरत नहीं जो.

यदाकदा गन्दी बस्तियों में जाकर दान-पुन्य आदि करके अपनी अन्तरात्मा को हलका करना चाहती हैं। समस्या पर इस तरह ग़ौर करनेवाले जितने भी कम मिलें उतना ही अच्छा है, पर ऊपर जिस संकुचित रास्ते का वर्णन किया जा चुका है, उसी तरह अपने सहयोगियों की सेवा में लगे हुए आदमियों की सख्या काफी है। वे काफी अच्छा काम करते हैं और उससे वे दूसरों को चाहे विशेष लाभ पहुचाएं या न पहुचाएं, स्वय वे अनुशासन में दक्ष हो जाते हैं।

पर मुझे यह मालूम होता है कि इस अच्छे काम का ज्यादा हिस्सा बरबाद हो जाता है, क्योंकि यह तो समस्या की सतह को ही स्पर्श करता है। सामाजिक कुरीतियों का एक इतिहास और एक पृष्ठ-भूमि है। उसकी जड़ हमारे अतीत में है और हम जिस आर्थिक ढाचे के अन्दर निवास करते हैं उससे उसका प्रगाढ़ सम्बन्ध है। उनमें से कई तो उसी आर्थिक प्रणाली के स्पष्ट परिणाम हैं और अन्य कई धार्मिक कट्टरता और हानिप्रद रीति-रस्मों से पैदा हुए हैं। अतः सामाजिक भलाई की समस्या पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने मे हम अनिवार्यतः बुराइयो की जड़ों में पहुंच कर उनका सबब जानने की कोशिश करेंगे। हममें सत्य के गहरे कूप में देख सकने और साफ-साफ कह सकने का साहस होना चाहिए। अगर हम धर्म, राजनीति और अर्थशास्त्र को नजरअन्दाज करें तो हम सतह पर ही रहेंगे और हमें न तो आदर ही हासिल होगा और न उसका कोई परिणाम ही हो सकेगा।

लगभग दो वर्ष से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण समिति से मेरा

सम्बन्ध रहा हूं और मेरे अन्दर यह विश्वास पैदा होता गया कि किसी भी समस्या को अलग करके उसका हल निकालना सम्भव नहीं है। सभी समस्याएं साथ सबद्ध हैं और ज्यादातर आर्थिक ढाचे पर आश्रित हैं। सीमित अर्थ में यही बात सामाजिक समस्याओं पर भी लागू होती है। हाल में निर्माण-समिति ने अपनी उप-समिति की उस रिपोर्ट पर विचार किया था, जिसमें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में महिलाओं के स्थान के बारे में चर्चा की गई थी। इस उप-समिति ने सामाजिक समस्याओं पर अच्छी तरह गौर किया था। अपने कार्य के दौरान में उसे बराबर राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक पहलुओं का सामना करना पड़ता था।

यह कह सकना सरल नहीं है कि रक्षित धार्मिक या रक्षित आर्थिक स्वार्थों में किस पर गौर करना अधिक मुश्किल है। ये दोनों ही स्वार्थ-स्थिति को ज्यों-का-त्यों रखने के पक्ष में हैं और परिवर्तन के विरोधी हैं। इस तरह एक सच्चे सुधारक का काम दरअसल बहुत जटिल है।

इसके पहले कि हम किसी विशेष सुधार का प्रारम्भ करें, यह निहायत जरूरी है कि हम यह समझें कि हमारा उद्देश्य क्या है और हम किस प्रकार के समाज की स्थापना चाहते हैं। यह स्पष्ट है कि अगर एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित की जा सके जिसमें सभी बालिगों को काम और सुरक्षा का आश्वासन हो, जिसमें युवकों के लिए शिक्षा का समुचित प्रबन्ध हो, जिसमें जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं का व्यापक वितरण हो और जिसमें आत्मिक विकास के

[illegible] किसी अवसर आवश्यकता हो तो यह काम [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] को [illegible] हो जायगा और [illegible] [illegible] में वहीं अधिक [illegible] [illegible] हो सकता।

इसलिए अवसर इस बात का है कि इस मसले पर सभी वर्गों द्वारा ध्यान दिया जाय और समझ लें कि सम-कालीन धार्मिक लोगों पर इसका बड़ी गम्भीर मानने असर सकी हो। अतः यह धर्म का मामला है उसमें दखल करने की ज़रूरत नहीं, पर ऐसे अनेक नियम और प्रतिबन्ध हैं, जिन्हें धार्मिक स्वीकृति मिली हुई है। उसपर जब किसी प्रकार की आंच आती दिखाई देगी तो धर्म के ठेकेदार बड़ा गम्भीर विरोध करेंगे। विवाह, श्राद्ध और तलाक को विभिन्न सम्प्रदायों के उनके कानून का अंग समझा जाता है और इसी व्यक्तिगत कानून को धर्म का अंग समझा जाता है। यह साफ़ है कि ऊपर से किसी प्रकार का परिवर्तन समाज पर लादा नहीं जा सकता। इसलिए तत्कालीन सरकार का यह फर्ज होगा कि वह जनता को इस तरह शिक्षित करे कि वह आने वाले परिवर्तनों को स्वीकार कर ले।

सन्देह को दूर करने के लिए यह साफ तौर पर बतला दिया जाना चाहिए कि कोई भी परिवर्तन जनता के किसी तबके पर बिना उसकी मर्जी के जबरन न लादा जायगा। इससे कठिनाइयां उत्पन्न होंगी और कानून के अमल करने में किसी प्रकार की एकरूपता की स्थापना न हो सकेगी, पर साथ ही दूसरा रास्ता यानी परिवर्तन को जबरन लाद

देना तो और भी बड़े दुर्भावनाओं को पैदा कर देगा।

मुझे ऐसा मालूम होता है कि सारे हिन्दुस्तान के लिए एक नागरिक कानून-प्रणाली होनी चाहिए। सरकार को इसके लिए प्रचार जारी रखना चाहिए। एक बड़ी भारी जरूरत इस बात की है कि किसी भी धर्म के व्यक्तियों को बिना अपना धर्म त्याग किए हुए शादी करने की आज्ञा दी जाय। वर्तमान सिविल मैरिज कानून में यह सुधार होना चाहिए।

तलाक के कानून की हिन्दुओं के लिए बड़ी सख्त जरूरत है। हम चाहते हैं कि परिवर्तन ऐसे हों जो पुरुषों और स्त्रियों दोनों पर लागू हों। हम यह भी चाहते हैं कि सदियों से दोहरे बोझ के नीचे पिसने वाली महिलाओं को इन परिवर्तनों से लाभ पहुंचे। हमें चाहिए कि स्त्री और पुरुष के बीच हम प्रजातन्त्र के सिद्धान्त को स्वीकार कर अपने नागरिक कानूनों और समाज में उचित सुधार करें।

: १६ :

विज्ञान और युग

विज्ञान और विज्ञान के शिक्षा-भवनों से इधर मैं बहुत दूर रहा हूं और किस्मत और परिस्थितियां मुझे गई और शोर से भरे हुए बाजारों में, खेतों और कारखानों में ले गई है। हां, मनुष्य मेहनत करते हैं, कष्ट सहन करते हैं और जिंदा रहते हैं। इधर उन विशाल आन्दोलनों से भी मेरा सम्बन्ध रहा है, जिन्होंने हमारे इस देश को हिला दिया है। हांलाकि मैं कोलाहल और आन्दोलनो से घिरा हुआ रहा हूं, फिर भी विज्ञान के लिए मैं एक निपट अजनबी की तरह नहीं हू। मैंने भी विज्ञान के मंदिर में पूजा की है और अपने को उसके भक्तों में गिना है।

आज विज्ञान के प्रति कौन उदासीन हो सकता है? जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमें विज्ञान से सहायता लेनी पड़ती है। संसार के इस विशाल भवन की आधार-शिला विज्ञान ही है। मानव सभ्यता के दस हजार वर्ष लबे इतिहास में, पहले-पहल १५० वर्ष पूर्व, विज्ञान ने क्रांतिकारी रूप धारण कर सहसा प्रवेश किया और इतिहास के यह १५० वर्ष सबसे अधिक क्रांतिपूर्ण और विस्फोटक साबित हुए हैं। विज्ञान के इस युग में रहने वालों के लिए जीवन का वातावरण और गतिविधि पहले के युगों की अपेक्षा बिलकुल भिन्न है। लेकिन

का पूरी तरह से अनुभव करने वाले बहुत कम हैं और वे आज की समस्याओं को भी उस बीते दिन की सहायता और तुलना से समझना चाहते हैं, जो मर चुका है और गुजर चुका है।

विज्ञान के द्वारा जीवन में विशाल परिवर्तन हुए हैं, यद्यपि उनमें सभी मानवजाति के लिए कल्याणकारी सिद्ध नहीं हुए। किंतु उन परिवर्तनों में सबसे मुख्य और आशा-प्रद परिवर्तन विज्ञान के प्रभाव से मनुष्य में वैज्ञानिक दृष्टि-कोण का विकास है। यह सत्य है कि आज भी बहुत से लोग मानसिक दृष्टि से उसी पहले अवैज्ञानिक युग में रहते हैं और वे लोग भी जो बड़े उत्साह के साथ विज्ञान का पक्ष समर्थन करते हैं, अपने विचारों और कामों में अवैज्ञानिक दृष्टिकोण का ही परिचय दे डालते हैं। वैज्ञानिक लोग भी, यद्यपि वे अपने विषय के विशेषज्ञ होते हैं, कभी-कभी उस विषय से बाहर वैज्ञानिक दृष्टि-कोण का प्रयोग करना भूल जाते हैं। फिर भी केवल इस वैज्ञानिक दृष्टि-कोण से ही मनुष्य-जाति को कुछ आशा हो सकती है और उसके द्वारा ही संसार के क्लेशों का अन्त हो सकता है। संसार में परस्पर-विरोधी शक्तियों के संघर्ष चल रहे हैं। उनका विश्लेषण किया जाता है और उन्हें भिन्न नामों से पुकारा जाता है, लेकिन जो वास्तविक और प्रधान संघर्ष है वह वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक दृष्टिकोण का ही संघर्ष है।

विज्ञान के प्रारंभिक दिनों में धर्म और विज्ञान के पारस्परिक विरोध की बहुत चर्चा रही है। आज वह विरोध यथार्थ नहीं मालूम होता। आज विज्ञान का रूप अधिक

आवश्यक है। उसमें बहुत से विज्ञान को अलग करके देख सकता है और इस प्रकार से का रूप में परिवर्तन कर दिया है। आज उस समय विज्ञान और धर्म का मार्ग पारस्परिक है, क्योंकि यहाँ धर्म के मार्ग से पुकारे जाने वाली शक्ति द्वारा मध्यकाल धार्मिक कट्टरता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बीच पड़ी हुई खाई को बुद्धि के द्वारा स्वाभाविक समझते थे। इसी प्रकार विरोधी शक्तियों के बीच समझौता मुश्किल नहीं, क्योंकि विज्ञान इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि किसी भी शक्ति द्वारा, चाहे उसे कैसा भी अधिकार प्राप्त क्यों न दे दिया जाय, वस्तुगत की सच्चाइयों को बंद करने का प्रयत्न किया जाय। विज्ञान में यह नहीं हो सकता कि वह अंधविश्वास के पक्ष में, या बिना तहकीक के किसी दूसरे के विश्वासों के पक्ष में, प्रोत्साहन दे।

विज्ञान को केवल आकाश की ओर ही न देखना चाहिए और न केवल उसी को अपने नियन्त्रण में लाने का प्रयत्न करना चाहिए, बल्कि नीचे नरक के गर्त में निःशंक भाव से देखने की भी उसमें क्षमता होनी चाहिए। इनमें से किसी भी क्षेत्र से दूर भागने की कोशिश करना वैज्ञानिक का कर्तव्य नहीं। सच्चा वैज्ञानिक तो वह है जो जीवन और कर्मफल से निर्लिप्त है और जो सत्य की खोज में, जहाँ भी उसकी जिज्ञासा ले जाय, वहाँ तक जाने की क्षमता रखता है। अपने को किसी वस्तु से बाँध लेना और फिर वहाँ से न हट सकना तो सत्य की खोज को तर्क कर देना है और इस गतिशील संसार में गतिहीन हो जाना है।

सक्रिय समूह बनगया है और प्रकृति उस क्रिया-प्रतिक्रियाके लि रंगमच के समान है। हर जगह गति है, परिवर्तन है। वस् की वास्तविकता केवल 'क्रिया' में ही है, जो इस क्षण है और दूसरे क्षण नही भी है। क्रिया के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जब ठोस पदार्थ की यह गति है तो फिर सूक्ष्म तत्वों की गति क्या है, कौन कहे ?

विज्ञान सम्बन्धी विचारों के इस आश्चर्यजनक विकास के प्रकाश मे पुराने तर्क कितने सारहीन मालूम होते हैं। अब वह समय आगया है कि विज्ञान के विकास से अपने आपको अभिज्ञ बनाकर हमें बीते युग के विवाद को छो देना चाहिए। यह सत्य है कि विज्ञान के सिद्धान्त भी परि वर्तन-शील है और विज्ञान मे अटल सत्य या अन्तिम सत्य जैसी कोई चीज नही है; किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नही होता। और हमें अपने विचारों और कामों मे विश्व के सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रो में, धर्म तथा सत्य की खोज मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही काम लेना चाहिए। हमारा अस्तित्व चाहे साबुन के बबूले जैसे विश्व पर एक धूलि-कण की भाति ही क्यों न हो, लेकिन हमें यह न भूल जाना चाहिए कि इस धूलि-कण में मनुष्य की मानसिक और आत्मिक शक्तियां भी निहित है। युग-युगान्तर का लम्बा इतिहास उसी धूलि-कण के विकास की कथा है। उसने आपको इस पृथ्वी का स्वामी बना दिया है और पृथ्वी गर्भ तथा आकाश के वज्र से शक्ति कर संचय किया है। ने सृष्टि के रहस्यों को मापने का प्रयत्न किया है और

विकास के लिए केवल कारखानों की आवश्यकता है। व्याव-
हारिक हित के बजाय इस विकास को सामने रख देने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण और युग की मांग के अनुरूप ही उद्देश्य भी होने चाहिए।

अब तक जो काम हमारे देश पर लादे हुए थे, वह हमारी राष्ट्रीय चाहत व आशाओं और मांगों की दृष्टि से सौभाग्यवश अब बहुत कम होता है। आज गरीब [illegible] और तबाह विकास की दृष्टि से भी मदद की जरूरत दिखाई देती है, उसकी वजह अब पहले की तरह [illegible] नहीं है। अब समय आ गया है जब हमारे सामने बहुत बड़े सवाल हैं, जिनका हल होना जरूरी है। उन समस्याओं का निर्णय केवल राजनीतिज्ञों द्वारा न हो सकेगा क्योंकि उनमें व्यापक बुद्धि या विशेष ज्ञान का अभाव हो सकता है। उन समस्याओं का फैसला केवल वैज्ञानिकों द्वारा भी नहीं हो सकता है जो प्रत्येक पहलू को देख सकते हैं। इन समस्याओं का हल राजनीतिज्ञों और वैज्ञानिकों दोनों के ऐसे सहयोग द्वारा ही हो सकेगा जो किसी पूर्व-निश्चित सामाजिक उद्देश्य को अपना आधार माने।

उस सामाजिक उद्देश्य का होना जरूरी है, क्योंकि उसके बिना हमारे प्रयत्न व्यर्थ और तुच्छ होंगे और उन प्रयत्नों में पारस्परिक सहयोग का भी अभाव होगा। सोवियट रूस के सम्बन्ध में हम जानते ही हैं कि उचित उद्देश्य और पारस्परिक सहयोग के साथ प्रयत्न करने से एक पिछड़ा हुआ मुल्क भी ऐसा उन्नत औद्योगिक देश बन गया है, वहाँ का

जिक जीवन अब बराबर ऊंचा उठा रहा है । यदि हम जी से उन्नति करना चाहते हैं तो हमें भी कुछ ऐसे ही तों का प्रयोग करना पड़ेगा ।

हमारे देश में सबसे महत्वपूर्ण समस्या जमीन की समस्या लेकिन उससे बहुत निकट का सम्बन्ध रखनेवाली समस्या ग-धन्धों की भी है । उनके साथ-साथ समाज-सुधार की समस्याएं हैं । इन सब समस्याओं को साथ-ही-साथ हल ना होगा । उनके लिए एक सम्बद्ध कार्य-क्रम निर्धारित ना होगा । यह योजना बहुत विशाल है, किन्तु इसका यित्व अब कंधों पर संभालना ही होगा ।

पिछले साल अगस्त में कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों के निर्माण के द कांग्रेस कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव पास किया था, जिससे ज्ञानिकों और विशेषज्ञों को दिलचस्पी होनी चाहिए । स्ताव इस प्रकार है -

"कार्यसमिति मन्त्रि-मंडलों से सिफारिश करती है कि वे विशेषज्ञों की एक कमेटी नियुक्त करें । वह कमेटी उन महत्व-पूर्ण समस्याओं पर विचार करेगी, जिनका राष्ट्रनिर्माण और सामाजिक सुव्यवस्था के लिए हल होना अत्यन्त आवश्यक है । उन समस्याओं को हल करने के लिए बड़े पैमाने पर पैमाइश और बहुत से आंकड़ों का इकट्ठा किया जाना जरूरी होगा और राष्ट्रहित को ध्यान में रख कर उनके उद्देश्य भी निश्चित करने होंगे । इनमें से बहुत-सी समस्याएं प्रांतीय पैमाने पर हल नहीं की जा सकतीं । साथ ही पड़ोसी सूबों के अनेक हित परस्पर सम्बन्धित हैं । विनाशकारी बाढ़ों को

की जाती है। मुझे म्यूनिक के उस विशाल और अद्भुत अजायबघर की भी याद आती है और कभी-कभी मुझे यह ख्याल होने लगता है कि क्या हिन्दुस्तान में भी कभी ऐसी चीजें होंगी।

ऐसे मामलों में नेतृत्व करना विज्ञान-परिषदों का काम है और इन विषयों पर सरकार को सलाह देना भी वैज्ञानिकों का ही काम है। सरकार को उनके साथ सहयोग करना चाहिए, उनकी सहायता करनी चाहिए और उनकी विशेष योग्यता से लाभ उठाना चाहिए। लेकिन विज्ञान-परिषदों को हर समय सरकार की ओर से ही प्रेरणा की प्रतीक्षा न करनी चाहिए। हमें इस बात की आदत-सी होगई है कि हर मामले में सरकार की ओर से काम की शुरुआत का इंतजार करते रहें। काम शुरू करना सरकार का काम जरूर है, लेकिन योजनाओं की खुद शुरुआत करना वैज्ञानिकों का भी कर्तव्य है। एक दूसरे का इंतजार करने के लिए हमारे पास वक्त नहीं है। हमें आगे बढ़ना चाहिए।

रोकने के लिए, सिंचाई की समस्या तथा बाढ़ के कारण जमीन की मिट्टी में असर आजाने की समस्याओं पर विचार करने के लिए, मलेरिया के आक्रमणों की संभावना को कम करने के लिए और गांवों में बिजली निकालने की योजना को विस्तार देने के लिए नदियों की पूरी-पूरी पैमाइश होनी जरूरी है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए नदियों की घाटियों की पैमाइश और जांच करने की तथा सरकार की तरफ से बड़ी-बड़ी योजनाओं को चालू करने की जरूरत होगी। औद्योगिक उन्नति और उद्योग-धन्धों के नियन्त्रण के लिए भी प्रांतों के पारस्परिक सहयोग की बड़ी आवश्यकता है। इसलिए कार्य-समिति की सलाह है कि शुरू में विशेषज्ञों की एक अंतर्प्रांतीय कमेटी की नियुक्ति की जाय, जो इस बात को तय करे कि किन-किन समस्याओं पर और किस क्रम से विचार किया जाय।"

इस सम्बन्ध में कुछ कार्य तो हुआ भी है। कुछ कमेटियां भी नियुक्त की गई हैं, लेकिन इस दिशा में और अधिक काम होना चाहिए। विशेषज्ञों को बहुत बड़े पैमाने पर बड़ी-बड़ी समस्याओं को हल करना चाहिए। सार्वजनिक शिक्षा के लिए अजायबघर और स्थायी प्रदर्शनियों की योजना होनी चाहिए। ऐसी योजनाए किसानों के लिए खास तौर पर जिले-जिले में होनी चाहिए। मुझे किसानों की शिक्षा के लिए बनाए गये सोवियट रूस के अद्भुत अजायबघरों की याद आती है और मैं उनकी तुलना यहां की उन अजीबोगरीब नुमायशों से करने लगता हूं, जिनकी कभी-कभी योजना

ी जाती है। मुझे म्यूनिक के उस विशाल और अद्भुत
जायबघर की भी याद आती है और कभी-कभी मुझे यह
रत होने लगती है कि क्या हिन्दुस्तान में भी कभी ऐसी
ाजें होंगी।

ऐसे मामलों में नेतृत्व करना विज्ञान-परिषदों का काम
और इन विषयों पर सरकार को सलाह देना भी वैज्ञानिकों
ही काम है। सरकार को उनके साथ सहयोग करना चाहिए,
की सहायता करनी चाहिए और उनकी विशेष योग्यता
लाभ उठाना चाहिए। लेकिन विज्ञान-परिषदों को हर
य सरकार की ओर से ही प्रेरणा की प्रतीक्षा न करनी
हिए। हमें इस बात की आदत-सी होगई है कि हर मामले
सरकार की ओर से काम की शुरुआत का इंतजार करते
। काम शुरू करना सरकार का काम जरूर है, लेकिन
जनाओं की खुद शुरुआत करना वैज्ञानिकों का भी कर्तव्य
। एक दूसरे का इंतजार करने के लिए हमारे पास वक्त
ी है। हमें आगे बढ़ना चाहिए।